कलिकसंभव

भाषांतरकार ...
मुनिश्री जयानंद विजयजी

भक्ति का है भाव जिसमें, तुच्छ उसको जगत है ।
भय नहीं निर्भय है, वे जो कि प्रभु के भक्त है ॥
नरपति के चित्त मे, सुखशांति आ सकती नहीं ।
व्यर्थ जीवन है यदि, मन में प्रभुभक्ति नहीं ॥
आंख के अंधे न हो, सोचो विचारो बात को ।
मोह को आने न दो, अब तो अंधेरी ता को ॥
कुप खने जो ओर को, तस खाई तैयार ।
निम्ब वृक्ष पे आम्र फल, कैसे होय विचार ॥
मेढक पावन भाव से, प्रभु वंदन को जाय ।
काल ग्रास पथ में बना, देव रुप हुई काय ॥
दुष्कृत में हो आलसी, प्राणघात में पंग ।
परनिंदा में बधिर हो, तज परस्त्री को संग ॥
विश्वासघात करना नही, न करो अरि विश्वास ।
कृतघ्नता को त्याग दो, करो न पर की आस ॥
आगी से जलना भला, भला हल हल पान ।
सर्प संग सोना भला, बुरा मदिरा पान ॥
विषय भोग अरु पाप की, है शिक्षा सर्वत्र ।
धर्म हीनता गुण जहा, सौख्य शांति क्यो तले ॥
धर्म भावना के बिना, बिगड रही सब सृष्टि ।
भारत का दुर्भाग्य जो, उधर न जाती दृष्टि ॥
जहाँ देखो वहाँ ही लगी, कनक कामिनी चाह ।
रोटी कपडा विषय सुख, लगी हृदय में दाह ॥
नहीं रक्षक नहीं शरण है, यह संसार विचित्र ।
करनी का ही फल मिले, करनी करो पवित्र ॥
पर आलंबन छोड के, धरो तोष तज रोष ।
ज्ञाननिष्ठ स्वाध्याय रत, लहे सुधा संतोष ॥
जोरख धंदा जगत में, फंस जाते है लोग ।
एक मार्ग उद्धार का, धरो योग तजो भोग ॥
जो आशा के दास है, सब जग के दास ।
आशा जिनकी किंकरी, उनके पग जग वास ॥
विद्या बल धन रुप यश, कुल सुत वनिता मान ।
सभी सुलभ संसार मे, दुर्लभ आतम ज्ञान ॥

कृपक संवाद

भाषांतर

दिव्याशिष ...
आचार्यश्री विद्याचंद्र सूरीश्वरजी
मुनिराजश्री रामचंद्रविजयजी

भाषांतरकार ...
मुनिश्री जयानंद विजयजी

श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति भीनमाल
मुख्य संरक्षक ...
लेहर-कुन्दन ग्रुप
मुंबई - दिल्ली - चैन्नइ -हरियाणा
श्रीमती गेरोदेवी जेठमलजी
बालगोता परिवार मेंगलवा द्वारा
मुनिराजश्री जयानंदविजयजी
आदिठाणा की निश्रा में
२०६५ में शत्रुंजयतीर्थ में
चातुर्मास एवं उपधान
करवाया उस
निमित्ते

: प्रकाशक :

श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति, भीनमाल, राज.

: संरक्षक :

(१) सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल राज. मुंबई

(२) मीलियन ग्रुप, सूराणा, मुंबई, दिल्ली, विजयवाडा

(३) एम. आर. इम्पेक्स, १६-ए, हनुमान टेरेस, दूसरा माला, ताराटेम्पल लेन, लेमीग्टन रोड, मुंबई-७, फोन : २३८०१०८६

(४) श्री शांतिदेवी बाबुलालजी बाफना चेरीटेबल ट्रस्ट, मुंबई, महाविदेह भीनमालधाम, पालीताना र ३६४२७०

(५) संघवी जुगराज, कांतिलाल, महेन्द्र, सुरेन्द्र, दिलीप, धीरज, संदीप, राज, जैनम, अक्षत बेटा पोता कुंदनमलजी भुताजी श्रीश्रीमाल, वर्धमान गौत्रीय आहोर (राज.) कल्पतरु ज्वेलर्स, ३०५, स्टेशन रोड, संघवी भवन, थाना(प.)

(६) दोशी अमृतलाल चीमनलाल पांचशो वोरा थराद पालीताणा में उपधान करावाया उस निमित्ते।

(७) शत्रुंजय तीर्थे नव्वाणुं यात्रा आयोजन निमित्ते शा. जेठमलजी, लक्ष्मणराज, पृथ्वीराज, प्रेमचंद, गौतमचंद, गणपतराज, ललीतकुमार, विक्रमकुमार, पुष्पक, विमल, प्रदीप, चिराग, बेटा-पोता कीनाजी संकलेचा परिवार मेंगलवा, फर्म - अरिहन्त नोवेल्टी, **G.F3** आरती शोपींगसेन्टर, कालुपुरटंकशाला रोड, अहमदाबाद. पृथ्वीचंद एन्ड कं तीरुचिरापली **T.N.**

(८) थराद निवासी भणशाली मधुबेन कांतिलाल अमुलखभाई परिवार

(९) शा कांतिलाल केवलचंदजी गांधी सियाना निवासी द्वारा२०६३ में पालीताना में उपधान करवाया उस नीमित्ते।

(१०) 'लेहर कुंदन ग्रुप' शा जेठमलजी कुंदनमलजी मेंगलवा (जालोर)

(११) २०६३ में गुडामें चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस समय पद्मावती सुनाने के उपलक्ष में शा चंपालाल, जयंतिलाल, सुरेशकुमार, भरतकुमार, प्रिन्केश, केनित, दर्शित चुन्नीलालजी मकाजी काशम गौत्र त्वर परिवार गुडाबालोतान् जयचिंतामणि १०-५४३ संतापेट नेंल्लूर (आ.प्र.)

(१२) पू. पिताश्री पूनमचंदजी मातुश्री भुरीबई के स्मरणार्थ पुत्र पुखराज, पुत्रवधु लीलाबाई पौत्र फुटरमल, महेन्द्रकुमार, राजेन्द्रकुमार, अशोककुमार, मिथुन, संकेश, सोमील, बेटा, पोता परपोता शा. पूनमचंदजी भीमाजी रामाणी गुडाबालोतान् 'नाकोडा गोल्ड' ७०, कंसारा चाल, बीजामाले, रुम नं. ६७, कालबादेवी, मुंबई-२

(१३) शा सुमेरमल, मुकेशकुमार, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु, बेटा पोता पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा पिरिवार, मोदरा (राज.) राजरतन गोल्ड प्रोड., के.वी.एस. कोम्प्लेक्ष, ३/१अरुंडलपेट,गुन्टूर

(१४) एक सद् गृहस्थ, धाणसा.

(१५) गुलाबचंद राजकुमार छगनलालजी कोठारी अमेरीका, आहोर (राज.)

(१६) शांतिरुपचंद रवीन्द्रचन्द्र, मुकेश, संजेश, ऋषभ, लक्षित, यश,ध्रुव, शांतिरुपचंदजी मिलापचंदजी महेता जालोर अक्षय बेटा पोता मिलापचंदजी महेता, जालोर - बेंगलोर

(१७) वि.सं. २०६३ में आहोर में उपधान तप आराधना करवायी एवं पद्मावती श्रवण के उपलक्ष में पिताश्री थानमलजी मातुश्री सुखीदेवी, भंवरलाल, धेवरचंद, शांतिलाल, प्रवीणकुमार, मनीष, जिखिल, मित्तुल, आशीष, हर्ष, विनय, विवेक बेटा पोता कनाजी हकमाजीमुथा शा. शांतिलाल प्रवीणकुमार एण्ड को. राम गोपाल स्टीट. विजयवाडा.

(१८) बाफना वाडी में जिन मन्दिर निर्माण के उपलक्ष में मातुश्री प्रकाशदेवी चंपालालजी की भावनानुसार पृथ्वीराज, जितेन्द्रकुमार, राजेशकुमार, रमेशकुमार, वंश, जैनम, राजवीर, बेटा-पोता चंपालाल सांवलचन्दजी बाफना, भीनमाल.
नवकार टाईम, ५१, नाकोडा स्टेट न्यु बोहरा बिल्डींग, मुंबई-३

(१९) शा शांतिलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर (राज.) राजेन्द्र मार्केटींग, पो.बो. नं. १०८, विजयवाडा

(२०) श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीजी हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज. राजेन्द्र ज्वेलर्स, ४ रहेमान भाई बि. एस. जी. मार्ग, ताडदेव, मुंबई-३४

(२१) पूज्य पिताजी श्री सुमेरमलजी की स्मृतिमें मातुश्री जेठीबाई की प्रेरणा से जयन्तिलाल महावीरचंद दर्शन बेटा पोता सुमेरमलजी वरदीचंदजी आहोर, जे.जी. इम्पेक्स प्रा.लि.-५५ नारायण मुदली स्ट्रीट, चेन्नाई-७९.

(२२) स्व. हस्तीमलजी भलाजी नागोत्रा सोलंकी की स्मृति में हस्ते परिवार बाकरा (राज.)

(२३) मुनिश्री जयानंद विजयजी की निश्रामें लेहर कुंदन ग्रुप द्वारा शत्रुंजय तीर्थे २०६५ में चातुर्मास उपधान करवाया उस समय के आराधक एवं अतिथि के सर्व साधारण की आय में से सवंत २०६५.

: सह संरक्षक :

(२४) शा दूधमलजी, नरेन्द्रकुमार, रमेशकुमार बेटा पोता लालचंदजी मांडोत परिवार बाकरा (राज.) मंगल आर्ट, दोशी बिल्डींग, ३-भोईवाडा, भूलेश्वर, मुबंई-२

(२५) कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गौतमचंद, दिनेशकुमार, महेन्द्रकुमार, रवीन्द्रकुमार, बेटा पोता सोनाजी भेराजी धाणसा(राज.) श्री सुपर स्पेअर्स, ११-३१-३ ए. पार्क रोड, विजयवाडा, सिकन्द्राबाद.

(२६) शा समरथमल, सुकराज, मोहनलाल, महावीरकुमार, विकासकुमार, कमलेश, अनिल, विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार सायला (राज.) अरुण एन्टरप्राइजेस, ४ लेन ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२

(२७) शा नरपतराज, ललीतकुमार, महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश, महीपाल, दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, रीकेश, यश बेटा पोता खीमराजजी थानाजी कटारीया संघवी आहोर (राज.) कलांजली ज्वेलर्स, ४/२ ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२

(२८) शा तीलोकचन्द मयाचन्द एन्ड कं. ११६. गुलालवाडी, मुंबई-४

(२९) शा लक्ष्मीचंद, शेषमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रवीणकुमार, दीलीपकुमार रमेशकुमार बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया मोदरा (राज.) गुन्टूर

(३०) एक सद्गृहस्थ (खाचरौद)

(३१) शा भंवरलाल जयंतिलाल, सुरेशकुमार, प्रकाशकुमार, महावीरकुमार, श्रेणिककुमार, प्रितम, प्रतीक, साहील, पक्षाल बेटा पोता-परपोता शा समरथमलजी सोगाजी दुरगाणी बाकरा (राज.) जैन स्टोर्स, स्टेशन रोड, अंकापली-५३१००१

(३२) शा गजराज, बाबुलाल, मीठालाल, भरत, महेन्द्र, मुकेश, शैलेस, गौतम, नीखील, मनीष, हनी बेटा-पोता रतनचंदजी नागोत्रा सोलंकी साँथू (राज.)
फूलचंद भंवरलाल, १८० गोवींदाप्पा नायक स्ट्रीट, चेन्नाई-१

(३३) संघवी भंवरलाल मांगीलाल, महावीर, नीलेश, बन्टी, बेटा पोता हरकचंदजी श्री श्रीमाल परिवार आलासन राजेश इलेक्ट्रीकल्स ४८, राजा बिल्डींग, तिरुनेलवेली - ६२७००१

(३४) भंसाली भंवरलाल, अशोककुमार, कांतिलाल गौतमचंद, राजेशकुमार, राहुल आशीष, नमन, आकाश, योगेश, बेटा पोता लीलाजी कसनाजी मुं. सरत. फर्म : मंगल मोती सेन्डीकेट, १४/१५ एस. एस. जैन मार्केट, एम.पी.लेन, चीकपेट क्रोस, बेंगलोर-५३.

(३५) स्व. मातृश्री मोहनदेवी पिताजी श्री गुमानमलजी की स्मृति में पुत्र कांतिलाल जयन्तिलाल, सुरेश, राजेश सोलंकी जालोर. प्रविण एण्ड कं. १५-८-११०/२, बेगम बाजार, हैदराबाद-१२.

(३६) शा. कान्तीलालजी, मंगलचन्दजी हरण, दासपा, मुंबई.

(३७) गोल्ड मेडल इन्डस्ट्रीस प्रा. ली., रेवतडा, मुंबई विजयवाडा, दिल्ली.

(३८) राज राजेन्द्र टेक्सटाईल्स, एक्सपोर्टस लिमिटेड, १०१, राजभवन, दौलतनगर, बोरीवली (ईस्ट), मुंबई, मोधरा निवासी.

(३९) संघवी पुखराजजी नेकाजी धाणसा निवासी, संघवी इलेक्ट्रीकल्स, १३०, ओपनकारा स्ट्रीट, कोइमबटूर-६४१००१

(४०) शा. ताराचन्दजी भोनाजी, आहोर, मुंबई. महेता नरेशकुमार एन्ड कुं ..... भोइवाडा लेन, गुलालवाडी मुंबई-२.

(४१) श्रीमती फेन्सीबेन सुखराजजी चमनाजी कबदी मुंबई धाणसा, गोल्डन कलेक्सन, नं.-५ चांदी गली, ३रा भोईबाडा, भूलेश्वर मुंबई-२

(४२) शा भंवरलाल, सुरेशकुमार, शैलेषकुमार, राहुल, बेटा पोता
तेजराजजी संघवी कोमतावाला भीनमाल, एस. के. मार्केटींग, राजरतन इलेक्टीक्ल्स, के.सी.आई. वायर्स प्रा.लि. १६३. गोवीदाप्पा, नायकन स्ट्रीट, चेन्नाई - ६००००१

(४३) श्रीमती सुमटीबाई किशनलालजी की स्मृतिमें हस्ते कांतिलाल किरणकुमार, मयंक, काजल, कविता, संघवी परिवार लालाजी कांतिलाल मेन बजार, गुन्टुर (**A.P.**)

(४४) वल्लु गगनदास विरचंदभाई परिवार - थराद.

(४५) शा. जेठमलजी सागरमलजी की स्मृति में मूलचंद, महावीरकुमार आयुषी, मेहुल, रियान्सु, डोली, प्रागाणी ग्रुप-संखलेचा, मेंगलवा. राज रतन एसेंबली वर्क्स, १४३,/११६९, मोतीलाल नगर नं.-१, सांई मंदिर के सामने, रोड नं.-३, गोरेगांव (वेस्ट) मुंबई-१०४ संखलेचा मार्केटींग, ११-१३-१६, समाचारवारी स्ट्रीट, विजयवाडा-१.

जिसको चाहत तूं सदा, वह कभी न तेरी होय ।
स्वार्थ साधकर अलग हुए, बात न पूछे कोय ।
भवोदधि कारण राग है, मधु-लिपटी असि धार ।
इसको जो त्यागे नहीं, कैसे हो भव पार ।
जगमें साथी दोय है, आत्म और परमात्म ।
किसको अंधा नहीं किया, इस मोहने सचमुच ।
किसे नचाया नाच नहीं, कामदेव जग बीच ।
परिग्रह दुःख की खान है, चैन न इसमें लेश ।
इसके वश में है सभी, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
द्रव्य मोह अच्छा नहीं, जानत सफल जहान ।
फिर भी पैसे के लिए करत कुकर्म अजान ।
राजपाट के ठाठ से, बढकर समझे ताहि ।
शीलवान संतोष मुत, सो ज्ञानी जग मांहि ।
सर्व द्रव्य निज भाव में, रहते एक ही रूप ।
निश्चय नय से मान लो, जीव होत शिव भूप ।
जो चाहो निज पदार्थ को, पर को तजो सुजान ।
पर पदार्थ संसर्ग से, कभी न हो कल्याण ।
हितकारी निज वस्तु है, पर से वह नहीं होय ।
पर की ममता छोडकर, लीन निजातम होय ।
उपादान निज आतमा, अन्य सर्व परिहार ।
स्वात्म बिन होय नही, नौका भवोदधि पार
जब तक मन में बसत है, पर पदार्थ की चाह ।
तब तक दुःख संसार मे, भले हो वाह वाह ।
समय गया कुछ किया नही, नही जाना जिन सार ।
पर परिणति में मग्न हो, सहते दुःख अपार
पर को अपना मानकर, दुःखी होत संसार ।
ज्यों परछाई खान देखे, भौकत बार-बार ।
पर में निज की कल्पना, आप रूप निज खोय ।
आज काल कर जग मूआ, किया न आतम काज ।
पर पदार्थ के वश रहे, सफल हो कैसे काज ।
सब से सुखी इस जगत में, होता है वह जीव ।
पर संगत को छोडकर, निज में वह जीव ।

।। श्री शाश्वत तीर्थाधिराजाय नमः ।।

।। प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वराय नमः ।।

कुलक संग्रह

का मूल सहित हिन्दी भाषांतर -

श्री दान कुलकम्

परिहरिअरज्जसारो, उप्पाडिअ संजमिक्क गुरुभारो ।
खंधाओ देवदूसं, विअरं तो जयउ वीरजिणो ।।१।।

सब राजऋद्धि का त्यागकर संयम रूपी अतिभार जिन्होंने स्कंध पर उठाया है और इंद्र महाराजा ने दीक्षा के समय देवदूष्य वस्त्र स्कंध पर रखा है उस देव दूष्य वस्त्र का आधाभाग पीछे आने वाले याचक विप्र को दान में दे देने वाले श्री वीर विभु जयवंत वर्तो ।।१।।

चौबीस तीर्थंकरों में दीक्षा लेने के बाद दान देने का कार्य चरम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु ने ही किया है। अतः इस पंचम काल में दान धर्म का महत्त्व विशेष है। हमारे पास जो है उसे छोड़ के जाने के पूर्व उसका दान में उपयोग करना ही समझदारी है। यह संदेश वीर वीभु ने दिया है।

धम्मत्थकामभेया, तिविहं दाणं जयम्मि विक्खायं ।
तहवि अ जिणिंदमुणिणो धम्मदाणं पसंसंति ।।२।।

धर्म दान, अर्थ दान और काम दान ये तीन प्रकार के दान दुनिया में प्रसिद्ध है। [एक अपेक्षा से सभी दानों का समावेश इन तीन दानों में हो सकता है।] फिर भी भगवान की आज्ञा में रसीक मुनि जन तो

धार्मिक दान की ही प्रशंसा करते हैं।

दाणं सोहग्गकरं, दाणं आरोग्गसकारणं परमं ।
दाणं भोगनिहाणं, दाणं ठाणं गुणगणाणं ।।३।।

दान सुख-सौभाग्यकारक, परम आरोग्य का कारण, भोग सामग्री का निधान और अनेक गुणों के समूह का स्थान है। अर्थात् दान से सुख सौभाग्य, आरोग्य, भोगोपभोग की सामग्री अनेक गुणों का प्रकटीकरण प्राप्त होता है। साथ में—

दाणेण फुरइ कित्ती, दाणेण होइ निम्मला कंती ।
दाणावज्जिअहियओ, वेरी वि हु पाणियं वहइ ।।४।।

दान से कीर्ति, निर्मल कांति की वृद्धि और दान से वश बना हृदय वाला शत्रु भी दानी के घर में पानी भरने का कार्य भी कर लेता है। दान को वशीकरण मंत्र भी कहा है।

धणसत्थवाहजम्मे जं घयदाणं कयं सुसाहूणं ।
तक्कारणमुसभजिणो, तेल्लुकपियामहो जाओ ।।५।।

धनसार्थवाह के भव में सुसाधुओं को घृत का दान दीया था। उस पुण्य प्रभाव से ऋषभदेव तीन लोक के पितामह (नाथ-तीर्थंकर) बनें ।।५।।

दान के अनेक फलों में अंतिम सर्व श्रेष्ठ फल तीर्थंकर नाम कर्म का बंध बताया है। आत्मा दान देने से तीर्थंकर पद भी पा सकती है ।।५।।

करुणाइ दिन्नदाणो, जम्मंतरगहिअपुण्णकिरिआणो ।
तित्थयरचक्करिद्धिं, संपत्तो संतिनाहो वि ।।६।।

पूर्व भव में करूणा भाव से पारेवा को अभयदान दिया। उससे पुण्य करियाणे को खरीद लिया। जिससे श्री शांतिनाथजी तीर्थंकर और चक्रवृत्ति पदवी प्राप्त की ।।६।।

पंचसयसाहु भोयण, दाणावज्जिअसुपुण्णपब्भारो ।
अच्छरिअ चरिअ भरिओ, भरहो भरहाहिवो जाओ ।।७।।

पांचसो साधुओं को गोचरी लाकर देने वाले भरत चक्री के जीवने ऐसा पुण्य उपार्जन किया कि वह आश्चर्यकारी चरित्र वाला प्रथम चक्रवर्ती भी बनें ।।७।।

मूलं विणा वि दाऊं, गिलाणपडिअरणजोगवत्थ्णि ।
सिद्धो अ रयणकंबल-चंदणवण्णिओ वि तम्मि भवे ।।८।।

ग्लान साधु के उपयोग के लिए बिना मूल्य से रत्नकंबल और बावने चंदन को देने वाला व्यापारी वणिक उसी भव में मोक्ष में गया ।।८।।

दाउण खीरदाणं, तवेण सुसिअंगसाहुणोधणिअं ।
जणजणिअचमक्कारो, संजाओ सालिभद्दो वि ।।९।।

तपाचरण से शोषित देहवाले मुनिराज को क्षीर का दान देने से आज दिन तक सब को चमत्कार उत्पन्न करे ऐसा रिद्धि पात्र शालिभद्र कुमार बना ।।९।।

जम्मंतरदाणाओ, उल्लसिआऽपुव्वकुसलझाणाओ ।
कयउन्नो कयपुन्नो, भोगाणं भायणं जाओ ।।१०।।

पूर्वभव में दीये हुए दान के प्रवाह से प्रकटित अपूर्व शुभ ध्यान से पुण्यशाली ऐसा कयवन्ना सेठ विशाल सुखभोग का भोक्ता बना।।१०।।

घयपूस-वत्थपूसा, महरिसिणो दोसलेसपरिहीणा ।
लद्धीइ सव्वगच्छो-वग्गहगा सुहगइं पत्ता ।।११।।

सर्वथा दोष रहित ऐसे घृतपुष्य और वस्त्रपुष्य नाम के महामुनियों ने स्वलब्धि से सर्व गच्छ की निर्दोष घृतादि से भक्ति कर सद्गति प्राप्त की ।।११।।

जीवंतसामिपडिमाए, सासणं विअरिऊण भत्तीए ।
पव्वइऊण सिद्धो, उदाइणो चरमरायरिसि ।।१२।।

जीवंत स्वामी (महावीर प्रभु) की प्रतिमा के लिए भक्ति से ग्रामादि देकर चारित्र ग्रहणकर शासन में विचरण कर चरम शरीरी उदायी राजा सिद्ध गति को प्राप्त हुआ यह रत्न पात्र की भक्ति का फल दर्शक

कथानक है ।।१२।।

जिणहरमंडिअवसुहो, दाउ अणुकंपभत्तिदाणाइं ।
तित्थप्पभावगरेहिं, संपत्तो संपइराया ।।१३।।

जिसने पृथ्वी को जिनमंदिरों से सुशोभित कर दी वैसा संप्रति राजा अनुकंपादान और भक्ति दान देने से शासन प्रभावक की श्रेणि में नामांकित बना ।।१३।।

दाउं सद्धासुद्धे, सुद्धे कुम्मासए महामुणिणो ।
सिरिमूलदेवकुमारो, रज्जसिरिं पाविओ गुरुइं ।।१४।।

शुद्ध श्रद्धा से शुद्ध भाव पूर्वक निर्दोष उडद के बाकुले तपस्वी महामुनि को वहोराने से (जितशत्रु राजा का पुत्र) श्री मूलदेव कुमार विशाल राज्य लक्ष्मी का भोक्ता बना ।।१४।।

अइदाणमुहरकविअणविरइअसयसंखकव्ववित्थरियं ।
विक्कमनरिंद चरियं, अज्जवि लोए परिप्फुरइ ।।१५।।

अतीव प्रमाण में मुंह मांगा दान मिलने से कवियों ने (पंडितोंने) शताधिक काव्य रचना से विस्तृत श्री विक्रमादित्य राजा का चरित्र अद्यापि पर्यंत जगत में प्रसिद्ध है ।।१५।।

तियलोयबंधवेहिं, तष्भवचरिमेहिं जिणवरिंदेहिं।
कयकिच्चेहिं वि दिन्नं, संवच्छरियं महादाणं ।।१६।।

तीन लोक के बंधु ऐसे जिनेश्वरों ने उसी भव में निश्चित मोक्ष प्राप्ति के संयोग को जानते हुए भी, कृतकृत्य होते हुए भी उन्होंने सांवत्सरिक (एक वर्ष पर्यंत) महादान दिया ।।१६।।

सिरिसेयंसकुमारो, निस्सेयससामिओ कह न होइ ।
फासुअदाणपवाहो, पयासिओ जेण भारहम्मि ।।१७।।

जिसने प्रासुक (निर्दोष) दान का प्रवाह इस भरत क्षेत्र में सर्व प्रथम प्रारंभ किया ऐसा श्री श्रेयांस कुमार मोक्षाधिकारी कैसे न हो? अर्थात् वह मोक्ष को प्राप्त हुआ ।।१७।।

कह सा न पसंसिज्जइ, चंदणबाला जिणिंददाणेणं ।
छम्मासिअतवतविओ, निव्वविओ जीए वीरजिणो ।।१८।।

अभिग्रहवंत वीर विभु को छ मासी तप जिन्होंने किया है (पांच महिने और २५ दिन) उनको बाकुला (उडद के बाकुले) से प्रतिलाभित कर पारणा करवाने वाली चंदनबाला की प्रशंसा हम क्यों न करे? ।।१८।।

पढमाइं पारणाइं, अकरिंसु करंति तह करिस्संति ।
अरिहंता भगवंतो, जस्स घरे तेसिं धुवं सिद्धी ।।१९।।

अरिहंत परमात्माओं ने जिनके घर में दीक्षा के बाद का प्रथम पारणा किया है, करते हैं और करेंगे वे भव्यात्मा नियमा मोक्षगामी जानना ।।१९।।

जिणभवण-बिंब-पुत्थय-संघसरूवेसु सत्तखित्तेसु ।
ववियं धणं पि जायइ, सिवफलयमहो अणंतगुणं ।।२०।।

अहो जिनमंदिर, जिनबिंब, पुस्तक और श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका रूपी चतुर्विध संघ रूपी सात क्षेत्रों में बोया हुआ (दिया हुआ) धन अनंत-अक्षय फल दाता बनता है। अतः श्रावकों को सातों क्षेत्रों में धन व्यय करना चाहिए ।।२०।।

श्री शील कुलकम्

सोहग्गमहानिहिणो, पाए पणमामि नेमिजिणवइणो ।
बालेण भुयबलेणं, जणाद्दणो जेण निज्जिणिओ ।।१।।

जिन्होंने बाल्यावस्था में अपने भुजाबल से जनार्दन श्री कृष्ण को जीत लिया था। वे सुख सौभाग्य के समुद्र समान ऐसे बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ प्रभु के चरण कमल में मैं प्रणाम करता हूँ।।१।।

सीलं उत्तमवित्तं, सीलं जीवाण मंगलं परमं ।
सीलं दोहग्गहरं, सीलं सुक्खाण कुलभवणं ।।२।।

शील-सदाचरण ही प्राणियों का उत्तम धन, परम मंगल, दुःख दारिद्र नाशक और सब सुखों का धाम है ।।२।।

सीलं धम्मनिहाणं, सीलं पावाणखंडणं भणियं ।
सीलं जंतुण जए, अकित्तिमं मंडणं परमं ।।३।।

शील ही धर्म का निधान, पाप खंडन कर और जगत में प्राणियों के लिए स्वाभाविक श्रेष्ठ अलंकार कहा हुआ है ।।३।।

नरयदुवारनिरुंभण-कवाड संपुडसहोअरच्छायं ।
सुरलोअधवलमंदिर-आरुहणे पवरनिस्सेणिं ।।४।।

शील ही नरक के द्वारा बंध करने के लिए दरवाजे की जोड़ जैसा जबरदस्त है और देवलोक के उज्ज्वल विमानों पर आरूढ होने के लिए उत्तम निसरणी समान है ।।४।।

सिरिउग्गसेणधूया, राइमइ लहउ सीलवइरेहं ।
गिरिविवरगओ जीए, रहनेमी ठविओ मग्गे ।।५।।

श्री उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती शीलवती नारियों में श्रेष्ठ कहने योग्य है, क्योंकि गुफा में प्रथम से रहे हुए और राजीमती के रूप से मोहित रहनेमी को संयम मार्ग में स्थिर किया ।।५।।

पज्जलिओ वि हुजलणो, सीलप्पभावेण पाणीअं होइ ।
सा जयउ जअे सीया, जीसे पयडा जसपडाया ।।६।।

शील के प्रभाव से प्रज्वलित ऐसा अग्नि वास्तव में जलरूप में परिवर्तित हो गया ऐसी यश पताका जिसकी विश्व में प्रसर रही है ऐसी सीता देवी जयवंती वर्तो ।।६।।

चालणी जलेण चंपाए, जीए उग्घाडियं दुवारतिगं ।
कस्स न हरेइ चित्तं, तीए चरियं सुभद्दाए ।।७।।

चालणी के द्वारा जल खींचकर जिसने चंपानगरी के तीन द्वार खोले थे। उस सुभद्रा सती का शील चरित्र किस के चित्त का हरण नहीं करता? ।।७।।

नंदउ नमयासुंदरी, सा सुचिरं जीए पालिअं सीलं ।
गहिलत्तणं पि काउं, सहिआ य बिडंबणा विविहा ।।८।।

वह नर्मदा सुंदरी सती सदा जयवंती वर्तो, जिसने ग्रंथिलपना (पागलपना) स्वीकार कर भी शील का पालन किया और विविध प्रकार की शील रक्षा के लिए विडंबना सहन की ।।८।।

भद्दं कलावइए, भीसणरण्णम्मि राय चत्ताए ।
जं सा सीलगुणेणं, छिन्नंगा पुणन्नवा जाया ।।९।।

भयंकर अटवी में राजा द्वारा व्यक्त कलावती सती का कल्याण हो कि जिसके शीलगुण के प्रभाव से छेदित अंग (हाथ) भी पुनः नये हो गये ।।९।।

सीलवइए सीलं, सक्कइ सक्को वि वण्णिउं नेव ।
राय निउत्ता सचिवा, चउरो वि पवंचिआ जीए ।।१०।।

शीलवती के शील की महिमा का वर्णन करने में इंद्र भी समर्थ नहीं हो सकता, जिसने राजा द्वारा परीक्षा के लिए प्रेषित चारों प्रधानों को भ्रमित कर अपने शीलधन का रक्षण किया ।।१०।।

सिरिवद्धमाणपहुणा, सुधम्मलाभुत्ति जीए पट्ठविओ ।
सा जयउ जए सुलसा, सायरससिविमलसीलगुणा ।।११।।

श्री वर्द्धमान प्रभु ने जिसको उत्तम धर्मलाभ रूपी आशीष प्रेषित की थी, वह शरद ऋतु के चंद्रमा समान निर्मल शील गुणवाली सुलसा सती सर्वत्र जयवंती वर्तो ।।१०।।

हरिहरबंभपुरंदर-मयभंजणपंचबाणबलदप्पं ।
लीलाइ जेण दलिओ, स थूलभद्दो दिसउ भद्दं ।।१२।।

हरि, हर, ब्रह्मा और इंद्र के मद का दलन करने वाले कामदेव की सर्वशक्ति के गर्व का लीला मात्र में दलन कर दिया वे स्थूलि भद्र मुनिराज हमारा कल्याण करे ।।१२।।

मणहरतारुण्णभरे, पत्थिज्जंतो वि तरुणिनियरेणं ।
सुरगिरिनिच्चलचित्तो, सो वयरमहारिसी जयउ ।।१३।।

मनोहर यौवन वय में स्त्री समुदाय से प्रार्थित होने पर भी जो मेरुगिरि जैसा निश्चल चित्तवाले (दृढ़) रहे हुए श्री वज्रस्वामी महामुनि जयवंत वर्तो ।।१३।।

थुणिउं (मुणिउं) तस्स न सक्का, सड्ढस्स सुंदसणस्स गुणनिवहं।
जो विसमसंकडेसु वि पडिओ वि अखंडसीलधणो ।।१४।।

उस सुदर्शन श्रावक के गुणगण को गाने में कोई समर्थ नहीं हो सकता। जो भयंकर संकट आ गिरने पर भी अखंड शील को सुरक्षित रख सके ।।१४।।

सुंदरिसुनंद चिल्लण-मणोरमा अंजणा मिगावइ अ ।
जिणसासण सुपसिद्धा महासइओ सुहं दिंतु ।।१५।।

सुंदरी, सुनंदा, चेलणा, मणोरमा, अंजना और मृगावती आदि महासतियाँ जिनशासन में सुप्रसिद्ध बनी हुई हमे सुखशांति दो।।१५।।

अच्चंकारीअ दट्ठुण (सुणिऊण) को न धुणइ किर सीसं ।
जा अखंडिअसीला, भिल्लवइ कयत्थिआ वि ।।१६।।

अच्चंकारीभट्टा का अद्‌भूत चारित्र श्रवणकर अपना मस्तक कौन न धूने? कि जिसकी भिल्लपति ने अत्यंत कदर्थना करने पर भी अडीग

रहकर अपने शील को अखंड रखा ।।१६।।

नियमित्तं नियभाया, नियजणओ नियपियामहो वा वि ।
नियपुत्तो वि कुसीलो, न वल्लहो होइ लोआणं ।।१७।।

स्वयं का मित्र, भाई, पिता, पितामह, पुत्र ये अगर कुशील सदाचार हीन है तो वे अपने प्रियजनों को भी, लोगों को भी प्रिय नहीं होगे ।।१७।।

सव्वेसिं पि वयणं, भग्गाणं अत्थि कोइ पडियारो ।
पक्कघडस्स व कन्ना, ना होइ सीलं पुणो भग्गं ।।१८।।

दूसरे व्रतों के मूल से भंग हो जाने पर आलोचना प्रायश्चित्त आदि उपायों से शुद्धि रूपी प्रतिकार है परंतु जिस प्रकार पक्केघड़े के कांठे टूट जाने पर उसको नहीं सांधा जाता वैसे ही शीलव्रत का मूल से भंग होने पर उसकी प्रायश्चित्त से शुद्धि नहीं होती। पुनः व्रतारोपण ही करना पड़ता है ।।१८।।

वेआल भूअरक्खस-केसरिचित्तगयइंदसप्पाणं ।
लीलाइ दलइ दप्पं, पालंतो निम्मलं सीलं ।।१९।।

शील पालन की शक्ति दर्शाते हुए कहा कि—निर्मलशील की रक्षा करने वाला भव्यात्मा वेताल, भूत, राक्षस, केसरी सिंह, चित्ता, हाथी और सर्प के अहंकार का लीला मात्र में दलन कर देता है। अर्थात् उनकी शक्ति को खत्म कर देता है।।१९।।

जे केइ कम्ममुक्का, सिद्धा सिज्झंति सिज्झिहिंति तहा ।
सव्वेसिं तेसिं बलं विसालसीलस्स दुल्ललिअं [माहप्पं] ।२०९।।

जो कोई आत्मा महात्मा सर्व कर्म से मुक्त बनकर सिद्ध बनें, सिद्ध बनेंगे और सिद्ध हो रहे हैं वे सभी इस पवित्र शील धर्म के प्रभाव से ही। उत्तम-शील चारित्र [यथाख्यात चारित्र] की प्राप्ति होने वाली आत्मा की अवश्य सिद्धि होती है। अतः निर्मल शील का पालन सतत करते रहना ।।२०।।

श्री तप कुलकम्

सो जयउ जुगाइजिणो, जस्संसे सोहए जडामऊडो ।
तव झाणग्गिपज्जलिअ-कम्मिंधणधूमलहरि व्व [पंतिव्व]।।१।।

तप और ध्यान रूप अग्नि से जला दिये कर्म इंधनो की धूमपंक्ति जैसा जटा कलाप जिनके स्कंध पर शोभायमान है, वे युगादि प्रभु जयवंता वर्तो ।।१।।

सवंच्छरियतवेणं, काउस्सग्गम्मि जो ठिओ भयवं ।
पूरिओ नियम पइन्तो, हरउ दुरियाइं बाहुबली ।।२।।

एक वर्ष पर्यंत तप में स्थिर रहकर जिस महात्मा ने स्व प्रतिज्ञा पूर्ण की है वे बाहुबली मुनि भगवंत हमारे दूरित पाप दूर करो ।।२।।

अथिरं पि थिरं वंकं पि, उजुअं दुल्लहं पि तह सुलहं ।
दुस्सज्झं पि सुसज्झं, तवेण संपज्जए कज्जं ।।३।।

तप के प्रभाव से अस्थिर भी स्थिर, टेढा भी सरल, दुर्लभ भी सुलभ और दुसाध्य भी सुसाध्य हो जाता है ।।३।।

छट्ठ छट्ठेणं तवं कुणमाणो पढम गणहरो भयवं ।
अक्खीणमहाणसीओ, सिरिगोयमसामिओ जयउ ।।४।।

छट्ठ-छट्ठ तप, छट्ठ के पारणे छट्ठ करने वाले प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामीजी भगवंत महानसी आदि महान्लब्धि को प्राप्त हुए वे मुनि भगवंत जयवंत वर्तो. ।।४।।

सोहइ सणंकुमारो, तव बलखेलाइलद्धिं संपन्नो ।
निट्ठुअखबडियंगुलिं सुवण्णसोहं पयासंतो ।।५।।

थूंक से स्पर्शित अंगुली को स्वर्ण जैसी सुशोभित कर बताने वाले ऐसे श्री सनत्कुमार राजर्षि तपोबल से उत्पन्न खेलादिक लब्धि संपन्न होकर शोभित है ।।५।।

गो-बंभ-गब्भ-गब्भिणी,-बंभिणीघायाइ-गुरुअपावाइं।
काऊण वि कणयं पि व, तवेण सुद्धो दढप्पहारी ।।६।।

गौ, ब्राह्मण, गर्भ और गर्भवती ब्राह्मणी की हत्यारूपी महाउग्र पाप करने के पश्चात् दढप्रहारी चारित्र लेकर तप सेवन से शुद्ध स्वर्ण जैसे बन गये ।।६।।

पूव्वभवे तिव्वतवो, तविओ जं नंदिसेण-महरिसिणा ।
वसुदेवो तेण पिओ, जाओ खयरीसहस्साणं ।।७।।

पूर्व जन्म में नंदीषेण महर्षि ने जो तीव्र तप किया उसके प्रभाव से वे हजारो विद्याधरी कन्याओं के प्रिय-पति ऐसे वसुदेव हुए।।७।।

देवा वि किंकरत्तं, कुणंति कुलजाइविरहियाणं पि ।
तव मंतप्पभावेणं हरिकेसबलस्स व रिसिस्स ।।८।।

तीव्र तप और मंत्र जाप के प्रभाव से हरिकेशबल-ऋषि के समान उत्तम कुल-जाति हीन होने पर भी उनकी देवता भी सेवा करते थे ।।८।।

पडसयमेगपडेणं, एगेण घडेण घडसहस्साइं ।
जं किर कुणंति मुणिणो, तवकप्पतरुस्स तं खु फलं ।।९।।

जो मुनिभगवंत एक पट-वस्त्र से शताधिक पट-वस्त्र बना दे, और एक घट-बर्तन से हजारो घट-बर्तन बना दे यह निश्चय से तप रूप कल्पवृक्ष का ही फल है ।।९।।

अनिआणस्स विहिए, तवस्स तविअस्स किं पसंसामो ।
किज्जइ जेण विणासो, निकाइयाणं पि कम्माणं ।।

जिस तप से निकाचित कर्मो का भी क्षय हो सकता है, ऐसे नियाण रहित किये हुए तप की हम कितनी प्रशंसा करे?

अइदुक्करतवकारी, जगगुरुणा कण्हपुच्छिएण तदा ।
वाहरिओ सो महप्पा, समरिज्जओ ढंढणकुमारो ।।११।।

अढारह हजार मुनि भगवंतों में अति दुष्कर तप करनेवाले कौन-से मुनि भगवंत है? ऐसा श्रीकृष्ण द्वारा पूछने पर जगगुरु श्री नेमिनाथ

भगवंत ने जिन मुनि भगवंत की प्रशंसा की वे ढंढणकुमार मुनि भगवंत सदा स्मरणिय है ।।११।।

पइदिवसे सत्तजणे हणिऊण (वहिऊण) गहिय वीर जिण दिक्खो।
दुग्गाभिग्गहनिरओ, अज्जुणओ मालिओ सिद्धो ।।१२।।

प्रति दिन यक्षावेश से सात-सात मानवों की हत्या करनेवाले अर्जूनमाली ने वीर विभु के पास दीक्षा लेकर घोर-दुष्कर अभिग्रह के पालन में उद्यमवंत रहकर अर्जूनमाली मुनि सिद्धि पद को पाये।।१२।।

नंदीसर-रुअगेसु वि, सुरगिरिसिहरे वि एगफालाए ।
जंघाचारणमुणिणो, गच्छंति तवप्पभावेणं ।।१३।।

नंदीश्वर नामक अष्टम द्वीप और रुचक नामक तेरहवें द्वीप में मेरु पर्वत के शिखर पर एक ही उडान में जंघाचारण और विद्याचारण मुनिभगवंत इस तपधर्म के प्रभाव से ही जा और आ सकते है ।।१३।।

[जाने और आने की उडान में दोनों में तफावत है उसे गुरुगम से जानना]

सेणियपुरिसो जेसिं, पसंसिअं सामिणा तवोरूवं ।
ते धन्ना धन्नमुणी, दुण्हवि पंचुत्तरे पत्ता ।।१४।।

श्रेणिक राजा के पुछने पर श्री वीर परमात्मा ने जिनके तपोबल की प्रंशसा की थी वे काकंदी के धन्ना मुनि और शालीभद्रमुनि के बहनोई धन्नामुनि ये दोनों सर्वार्थ सिद्ध विमान में गये ।।१४।।

सुणिऊण तवं सुंदरी-कुमरीए अंबिलाणं अणवरयं ।
सट्ठिं वाससहस्सा, भण कस्स न कंपए हिययं ।।१५।।

ऋषभ देव की पुत्री सुंदरी ने दीक्षा प्राप्ति के लिए साठ हजार वर्ष पर्यंत निरंतर आयंबिल तप किया, उसे सुनकर कहो किसका हृदय कंपायमान हुए बिना रहेगा? ।।१५।।

जं विहिअमंबिल तवं बारस वरिसाइं सिवकुमारेण ।
तं दहठु जंबुरुवं, विम्हइयो सेणिओ राया ।।१६।।

पूर्व के शिवकुमार के भव में छट्ठ के पारणे आयंबिल बारह वर्ष

तक करने से जंबुकुमार के पूर्व के भव के देव भव के अद्‌भूत रूप को देखकर श्रेणिकराजा विस्मित बना था ।।१६।।

जिणकप्पिअ-परिहारिअ-पडिमापडिवन्न-लंदयाइणं ।
सोऊण तवसरूवं को अन्नो वहउ तवगव्वं ।।१७।।

जिनकल्पी, परिहार विशुद्धि, प्रतिमा प्रतिपन्न और यथालंदी साधुओं के तप का स्वरूप सुनकर दूसरा कौन तप का गर्व करना पसंद करेगा? ।।१७।।

मासद्धमासखवओ, बलभद्दो रूपवं पि हु विरत्तो ।
सो जयउ रण्णवासी, पडिबोहिय-सावयसहस्सो ।।१८।।

अति रूपवान होने पर भी नगर में आने से विरक्त होकर अरण्य में जिसने हजारो श्वापद पशुओं को प्रतिबोधित किये, वे मासक्षमण, अर्द्धमासक्षमण की तपस्या करनेवाले बलभद्र मुनि जयवंत वर्तो।।१८।।

थरहरिअधरं झलहलिअ-सायरं चलियसयल कुलसेलं ।
जं अकासी जयं विण्हु, संघकए तं तवस्सं फलं ।।१९।।

श्री संघ के कष्टनिवारण के लिए विष्णुकुमार मुनि भगवंत ने लक्ष योजन प्रमाण का शरीर बनाया तब पृथ्वी कंपायमान हुई, सागर हालकलोल हुआ और हिमवंतादिक पर्वत चलायमान हुए, श्रीसंघ की रक्षा की यह सब जिनाज्ञानुसार तपश्चर्या का ही फल है।।१९।।

किं बहुणा भणिएणं जं कस्स वि कह वि कत्थ वि सुहाइं।
दीसंति (तिहुअण) भवणमज्झे, तत्थ तवो कारणं चेव ।।२०।।

तप का अमाप प्रभाव का वर्णन कितना कर सके? जो किसी ने किसी प्रकार से किसी भी स्थान पर तीनों लोक में सुख समाधि की प्राप्ति होती है वहाँ सर्वत्र बाह्य-अभ्यंतर रूप बारह प्रकार के तपधर्म का ही प्रभाव है, ऐसा नियमा समझना अतः नित्य नियमा तप धर्म के सेवन में उद्यमवंत रहना ।।२०।।

श्री भाव कुलकम्

कमठासुरेण रइयम्मि, भीसेण पलयतुल्ल जलबोले ।
भावेण केवललच्छिं, विवाहिओ जयउ पासजिणो ।।१।।

कमठासुर द्वारा रचित अतीव भयंकर प्रलयकाल समान जल के उपद्रव के समय में समभाव धारणकर जिस केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त की वे श्री पार्श्वनाथ भगवंत जयवंत वर्तो ।।१।।

निच्चुण्णो तंबोलो, पासेण विणा न होइ जह रंगो ।
तह दाणसीलतवभावणाओ, अहलाओ सव्वं भावं विणा ।।२।।

जैसे काथे के बिना नागरवेल के पान का बीडा और पास बिना का वस्त्र अच्छी प्रकार रंगा नहीं जाता वैसे ही भाव बिना दान-शील-तप-भावनाएँ भी अफल जाती है ।।२।।

मणिमंतओसहीणं, जंततंताणदेवयाणं पि ।
भावेण विणा सिद्धि, न हु दीसइ कस्स वि लोए ।।३।।

मणि, मंत्र, औषधि वैसे ही जंत्र-तंत्र और देव साधना आदि अनुष्ठान दुनिया में किसी के भी भाव बिना सफल, सिद्ध नहीं होते।।३।।

सुहभावणावसेणं, पसन्नचंदो मुहुत्तमित्तेण ।
खविऊण कम्मगंठिं, संपत्तो केवलं नाणं ।।४।।

शुभ भाव के योग से प्रसन्नचंद्र राजर्षि एक अंतर्मुहूर्त मात्र में राग द्वेषमय कर्म ग्रंथि को तोड़कर (कर्म खपाकर) केवलज्ञान को प्राप्त हुए ।।४।।

सुस्सूसंती पाए, गुरुणीणं गरहिऊण नियदोसे ।
उप्पन्न दिव्वनाणा, मिगावइ जयउ सुहभावा ।।५।।

अपने अपराध की निंदा गर्हा करती हुई, गुरुणी के चरण कमल की सेवा करते-करते जिसको शुभ भाव से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह मृगावती साध्वी जयवंत वर्तो ।।५।।

भयवं इलाइपुत्तो गुरुए वंसम्मि जो समारूढो ।
दट्ठुण मुणिवरिंद, सुहभावओ केवली जाओ ।।६।।

ऊँचे वांस पर नाचने के लिए चौथी बार चढ़ा हुआ गोचरी वहोरते मुनि भगवंत को देखकर शुभ भाव से इलाची पुत्र को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। वे भगवंत इलाची पुत्र केवली बनें।

कविलो य बंभणमुणी, असोगवणियाइं मज्झयारम्मि ।
लाहा लोह त्ति पयं, पढंतो (झायंतो) जायजाइसरो ।।७।।

कपिल नामक ब्राह्मण अशोक वाटिका में 'जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ' इस पद पर चिंतन करते-करते जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त कर मुनि कपिल बन गये ।।७।।

खवगनिमंतणपुव्वं, वासिअभत्तेण सुद्धभावेण
भुंजंतो वरनाणं संपत्तो करगड्डू वि (करगडूओ) ।।८।।

वासित भात से तपस्वी साधुओं को निमंत्रण करने पूर्वक (उनके द्वारा श्लेष्म डालने पर भी उसे घृत समझकर) उस भात से गोचरी करते शुद्ध भाव से केवलज्ञान को प्राप्त हुए ।।८।।

पूव्वभवसूरिविरइय-नाणासाअणपभावदुम्मेहो ।
नियनामं झायंतो मासतुसो केवली जाओ ।।९।।

पूर्वभव में आचार्य पद में ज्ञान की आशातना करने के प्रभाव से बुद्धिहीनता के कारण मातुस-मारूस के स्थान पर 'मासतुस' शब्द का रटन भी विशुद्ध भाव से करने के कारण लोगों ने उनका नाम ही 'मासतुस' रख दिया था। वे उसी शब्दों का पुनरावर्तन करते करते विशुद्ध भाव से केवली बन गये ।।९।।

हत्थिम्मि समारूढा, रिद्धिं दट्ठुण उसभसामिस्स ।
तक्खण सुहझाणेणं, मरुदेवी सामिणी सिद्धा ।।१०।।

गजारुढ़ मरुदेवा माता अपने पुत्र ऋषभ देव की ऋद्धि देखकर भावना में शुद्ध भाव से चिंतन कर सिद्ध पद को प्राप्त हुए ।।१०।।

पडिजागरमाणीए, जंघाबलखीणमण्णिआ पुत्तं ।
संपत्त केवलाए, नमो नमो पुप्फचूलाए ।।११।।

जंघाबल क्षीणता के कारण स्थिरवास में स्थित श्री अर्णिका पुत्र

आचार्य आचार्य की सेवा में उचित वैयावच्च करते-करते केवलज्ञान पाने वाली उस पुण्पचूला साध्वी को पुनः पुनः नमस्कार हो ।।११।।

पन्नरसयतावसाणं, गोअमनामेण दिनदिक्खाणं ।
उप्पन्नकेवलाणं, सुहभावाणं नमो ताणं ।।१२।।

गणधर गौतमस्वामीजी द्वारा प्रदत्त दीक्षा के दिन ही गौतमस्वामी की लब्धि, समवरसरण एवं भगवंत को देखते ही पंद्रह सो तापस मुनियों को शुद्ध भाव से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ उनको हमारा नमस्कार ।।१२।।

जीवस्स सरीराओ, भेयं नाउं समाहिपत्ताणं ।
उप्पाडिअनाणाणं, खंदकसीसाण तेसिं नमो ।।१३।।

पापी पालक द्वारा यंत्र में भयंकर यातना सहन करते हुए भी जीव-शरीर के भेद के ध्यान से समाधि में रहने से जिनको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उन स्कंदकसूरि के शिष्यों को नमस्कार हो।।१३।।

सिरिवद्धमाणपाए, पूअत्थी सिंदुवारकुसुमेहिं ।
भावेण सुरलोए, दुग्गइनारी सुहं पत्ता ।।१४।।

श्री वर्धमान स्वामी के चरणों को सिंदुरवार के पुष्पों से पूजने की इच्छा वाली दुर्गता नारी शुभ भाव से देवगति में उत्पन्न होकर सुख भोक्ता बनी। यह भी भाव का ही प्रभाव है ।।१४।।

भावेण भुवण नाहं, वंदेउं दद्दुरो वि संचलियो ।
मरिऊण अंतराले, नियनामंको सुरो जाओ ।।१५।।

एक मेंढक भी शुभ भाव से भुवनगुरु श्री वर्धमान स्वामी को वंदन करने चला, वहां मार्ग में ही अश्व के खरी के नीचे मृत्यु को प्राप्त कर निजनामांकित दर्दूरांक नामक देव बना। यह भी शुभ भाव का ही परिणाम है ।।१५।।

विरयाविरयसहोअर उदगस्स भरेण भरिअसरिआए ।
भणियाए साविआए, दिन्नो मग्गुत्ति भाववसा ।।१६।।

दीक्षित भाई अविरत श्रावक दोनों सगे भाई ने मैं उपवासी और मैं ब्रह्मचारी दोनों के द्वारा क्रमशः कहने से श्राविका (राजराणी) को नदी ने मार्ग दे दिया। एक टाइम भोजन करते भी उपवासी। सदार संतोषी भी ब्रह्मचारी यह शुभ भाव का परिणाम था ।।१६।।

सिरिचंडरुद्धगुरुणा, ताडिज्जंतो वि दंडघाएण ।
तक्कालं तस्सीसो, सुहलेसो केवली जाओ ।।१७।।

श्री चंडरूद्राचार्य गुरु द्वारा दंड प्रहार से मस्तके ताड़ित भी शुद्ध भाव-शुभ लेश्यावंत होकर तत्काल केवली बना ।।१७।।

जं न हु भणिओ बंधो, जीवस्स वहम्मि समिइ गुत्ताणं ।
भावो तत्थ पमाणं, न पमाणं कायवावारो ।।१८।।

पांच समिति तीन गुप्ति से युक्त साधुओं के द्वारा अचानक जीव वध हो जाय तो भी उनको निश्चय से कर्म बंध नहीं कहा, उसमें भाव की ही प्रधानता है। काय व्यापार की प्रधानता नहीं ।।१८।।

भावच्चिअ परमत्थो, भावो धम्मस्स साहगो भणिओ ।
सम्मत्तस्स वि बीअं, भावच्चिय बिंति जगगुरुणो ।।१९।।

भाव ही वास्तविकता से परमार्थ है, भाव ही धर्म के साधन प्राप्त करवाने वाला है, भाव ही सम्यक्त्व का बीज है, ऐसा श्रीत्रिभुवनगुरु तीर्थंकर परमात्मा कहते हैं ।।१९।।

किं बहुणा भणिएणं, तत्तं निसुणेह भो! महासत्ता ।
मुक्खसुहबीयभुओ, जीवाण सुहावहो भावो ।।२०।।

अधिक तो क्या कहे? हे सत्त्ववंत महाशय! मैं आपको तत्स्वरूप वचन कहता हूँ उसे सावधानी पूर्वक सुनो—

मोक्ष सुख के बीज रूप भाव ही जीवों को सुखकारी है। अर्थात् सद्भाव के योग से ही जीव दल मोक्ष सुख प्राप्त कर सकते हैं ।।२०।।

इय दाणसीलतवभावणाओ जो कुणइ सत्ति भत्ति परो ।
देविंदविंदमहियं, अइरा सो लहइ सिद्धिसुहं ।।२१।।

इस दान-शील-तप-भावों की आराधना-शक्ति और भक्ति के उल्लास योग से करता है वह इंद्रों के समूह से पूजित ऐसा अक्षय मोक्ष सुख अल्प काल में प्राप्त करेगा ।।२१।। इन चारों कुलक के रचयिता श्री देवेन्द्रसूरिजी है। जिन्होंने नव्य पांच कर्म ग्रंथ की रचना की है।

संविग्न साधु योग्यं नियमकुलकम्

- श्री सोमसुंदरसूरि रचित

भुवणिक्कपइवसमं, वीरं नियगुरुपए य निमिऊणं ।
विरइयरदिक्खियाणं, जुग्गे नियमे पवक्खामि ।।१।।

तीन भुवन में एक असाधारण प्रदीप समान श्री वीरविभु को और निज गुरु के चरणारविंद में नमन कर सर्व विरति वालों के प्रायोग्य सुख पूर्वक निर्वाह कर सके ऐसे नियम, मैं (सोम सुंदरी) कहूँगा ।।१।।

निअउअरपूरणफला, आजीविअमित्तं होइ पवज्जा ।
धूलिहडीरायत्तण-सरिसा सव्वेसिं हसणिज्जा ।।२।।

साधु प्रायोग्य नियमों के पालन किये बिना की दीक्षा केवल पेट भरने रूप आजीविका चलाने रूप फलवाली कही गयी है और ऐसी दीक्षा होली के राजा (इलाजी) के जैसी सभी के लिए हास्यास्पद होती है ।।२।।

तम्हा पंचायरा-राहण हेउं गहिज्ज इअ नियमे ।
लोआइकट्ठरूवा पव्वज्जा जहभवे सफला ।।३।।

इसलिए पंचाचार के आराधन के लिए लोचादिक कठिन अभिग्रह धारण करने चाहिए जिससे आदर पूर्वक ग्रहण की हुई दीक्षा सफल हो ।।३।।

नाणाराहणहेउं पइदिअहं पंचगाह पढणं मे ।
परिवाडिओ गिण्हे, पणगाहा णं च सट्ठा य ।।४।।

ज्ञान आराधना के लिए मैं प्रतिदिन पांच गाथा नयी याद करूंगा और क्रमशः पांच-पांच गाथा के अर्थ भी ग्रहण करूंगा ।।४।।

अण्णेसिं पढणत्थं, पणगाहाओ लिहेमि तह निच्चं ।
परिवाडीओ पंच य, देमि पढंताण पयदियहं ।।५।।

और मैं दूसरों के अध्ययन के लिए प्रतिदिन पांच गाथा लिखूंगा और दूसरे अध्येताओं को प्रतिदिन क्रमशः पांच पांच गाथा पढाऊंगा, अर्थ करवाऊंगा आदि ।।५।।

वासासु पंचसया, अट्ठय सिसिरे अ तिन्नि गिम्हंमि ।
पइदियहं सज्झायं, करेमि सिद्धंतगुणणेणं ।।६।।

सिद्धांत पाठ के पुनरावर्तन के लिए वर्षाऋतु में पांचसो, शिशिर ऋतु में आठसो और ग्रीष्म ऋतु में तीनसो गाथा प्रमाण स्वाध्याय ध्यान करूंगा ।।६।।

परमिट्ठिनवपयाणं, सयमेगं पयदिणं समरामि अहं ।
अह दंसणआयारे गहेमि नियमे इमे सम्मं ।।७।।

परमेष्ठि नवपद (नवकार महामंत्र) का एकसो बार मैं सदा रटण करूं (एक पक्की माला रोज गिनुंगा)।

अब दर्शानाचार की आराधना के लिए निम्न नियमों को ग्रहण करता हूँ ।।७।।

देवेवंदे निच्चं पणसक्कत्थएहिं एकवारमहं ।
दो तिन्निय वा वारा पइजामं वा जहासत्ति ।।८।।

पांच शक्रस्तव से प्रतिदिन एकबार देववंदन करूंगा ही या दो बार, तीन बार या प्रति प्रहर यथा शक्ति प्रमाद रहित देववंदन करूंगा ।।८।।

अट्ठमीचउद्दस्सीसुं, सव्वाण वि चेइयाइं वंदिज्जा ।
सव्वेवि तहा मुणिणो, सेसदिणे चेइयं इक्कं ।।९।।

प्रति अष्टमी, चतुर्दशी के दिन सभी चैत्यों में दर्शन करना और सभी मुनिराजों को वंदना करनी। शेष दिनों में एक चैत्य में दर्शनवंदन करने अवश्य जाना ।।९।।

पइदिणं तिन्निय वारा जिट्ठे साहुनमामि निअमेणं ।
वेयावच्चं किंचि गिलाण-वुड्ढाणं कुव्वे ।।१०।।

प्रतिदिन ज्येष्ठ साधु को तीन बार वंदना करूंगा ही और दूसरे

ग्लानादि वयोवृद्धादि मुनिवरों की यथाशक्ति वैयावच्च करूंगा।।१०।।

अह चारित्तायारे, नियमग्गहणं करेमिभावेणं ।
बहिभूगमणाइसुं, वज्जे वत्ताइं इरियत्थं ।।११।।

अब चारित्राचार के विषय में निम्न नियम भाव पूर्वक स्वीकार करता हूँ।

१. ईर्यासमिति - बड़ीनीति-लघुनीति करने में, आहार पानी वहोरने में ईर्यासमिति के पालन के लिए जीव रक्षार्थ मार्ग में किसीसे बातें करने का त्याग करता हूँ ।।११।।

अपमज्जियगमणम्मि य संडासा पमज्जिउं च उवविसणे ।
पाउंछणयं च विणा,उवविसणे पंचनमुक्कारा ।।१२।।

पूजने प्रमार्जने के बिना चलने से, अंग प्रतिलेखन, संडासा प्रतिलेखन बिना बैठने से, आसन बिना बैठने से तत्काल पांच नवकार या पांच खमासमण दूंगा ।।१२।।

उग्घाडेण मुहेणं, नो भासे अहव जत्तियावारा ।
भासे तत्तिया मित्ता, लोगस्स करेमि उस्सग्गं ।।१३।।

२. भाषासमिति - उघाड़े मुख मुहपत्ति बिना बोलूं ही नहीं फिर भी भूल से जितनी बार बोला जाय उतनी बार ईर्यावही प्रतिक्रमण पूर्वक लोगस्स का काउस्सग्ग करूंगा ।।१३।।

असणे तह पडिक्कमणे, वयणं वज्जे विसेस कज्ज विणा ।
सक्कीयमुवहिं च तहा, पडिलेहंतो न बेमि सया ।।१४।।

गोचरी पानी करते, प्रतिक्रमण करते समय अतीव महत्त्व के कार्य के अलावा-किसी को कुछ नहीं कहूंगा और मेरी अल्प उपधी की प्रतिलेखना करते समय भी नहीं बोलूंगा ।।१४।।

अन्नजले लब्भते विहरे नो धावणं सकज्जेणं ।
अगलियजलं न विहरे, जरवाणीय विसेसेणं ।।१५।।

३. एषणासमिति - निर्दोष प्रासुक जल मिलेगा वहां तक प्रयोजन

होने पर भी धोवण जल ग्रहण नहीं करूंगा। बिना छाना जल ग्रहण नहीं करूंगा और झरवाणी (झरा हुआ-महेल मेडी से आया हुआ वर्षा का जल) विशेष करके नहीं लूंगा ।।१५।।

सक्कियमुवहिमाइ पमज्जिउं निक्खिवेमि गिण्हेमि ।
जइ न पमज्जेमि तओ, तहेव कहेमि नमुक्कारं ।।१६।।

४. आदान-निक्षेपणा समिति - मेरी उपधि आदि पूंज प्रमार्जनाकर लेऊँगा रखूंगा, इसमें प्रमाद हो जाय तो एक नवकार उसी समय गिनूंगा ।।१६।।

जत्थ व तत्थ व उज्झणि, दंडगउवहीणं अंबिलं कुव्वे ।
सयमेगं सज्झायं उस्सग्गे वा गणेमि अहं ।।१७।।

दांडा प्रमुख उपधि अस्त व्यस्त रखने में आ जाय तो एक आयंबिल या खड़े-खड़े सो श्लोक का स्वाध्याय काउस्सग्ग मुद्रा में करूंगा ।।१६।।

मत्तगपरिट्ठवणम्मि य, जीव विणासे करेमि निव्वियं ।
अविहीइ विहरिऊणं परिठवणे अंबिलं कुव्वं ।।१८।।

५. पारिठावणिया समिति - लघुनीति या खेलादिक का भाजन परठते समय किसी जीव की विराधना हो जाय तो निवी करूंगा। अविधि से (सदोष) आहार पानी वहोरने के बाद परठना पड़े तो आयंबिल करूंगा ।।१८।।

अणुजाणह जस्सुग्गह, कहेमि उच्चारमत्तगट्ठाणे ।
तह सन्ना डगलग जोग, कप्पतिप्पाइ वोसिरे तियगं ।।१९।।

बड़ीनीति-लघुनीति करने-परठने के स्थान पर 'अणुजाणह जस्सुग्गह' प्रथम बोलूंगा वैसे ही परठते समय तीन बार वोसिरे कहूंगा ।।१९।।

रागमये मणवयणे इक्किक्कं निव्वियं करेमि अहं ।
कायकुचिट्ठाए पुणो उपवासं अंबिलं वा वि ।।२०।।

मन, वचन, काय गुप्ति में रागमयता हो तो नीवी करूंगा और कायकुचेष्टा हो जाय, उन्मादी बन जाऊं तो उपवास करूंगा ।।२०।।

बेइंदियमाइण वहे, इंदियसंखा करेमि निव्वियया ।
भयकोहाइवसेणं, अलीयवयणंमि अंबिलयं ।।२१।।

१. अहिंसाव्रते - दो इंद्रियादि जीव विराधना प्रमादाचरण से हो तो जितनी इंद्रिय वाले जीव की विराधना उतनी निवी करूंगा।

२. सत्यव्रते - भय-क्रोध-लोभ-हास्यादिक से असत्य भाषण हो तो आयंबिल करूंगा ।।२१।।

पढमालियाइ न गिण्हे, घयाइवत्थुण गुरुअदिट्ठाणं ।
दंडग तप्पणगाइं, अदिन्नगहणे य अंबिलयं ।।२२।।

अस्तेय व्रते - प्रथम भिक्षा में आये हुए घृतादिक पदार्थ गुरु भगवंत को बताये बिना नहीं लूंगा और दांडा, तर्पणी आदि दूसरों की रजा के बिना ले लूं (वापरूं) तो आयंबिल करूंगा ।।२२।।

एगित्थीहिं वत्तिं, न करे परिवाडिदाणमवि तासिं ।
इगवरिसारिहमुवहिं ठावे अहिगं न ठावेमि ।।२३।।

ब्रह्मव्रते - अकेली स्त्री के साथ बातें न करूं, अकेली स्त्रियों को न पढाऊँ।

परिग्रहपरिहास व्रते - एक वर्ष चले उतनी उपधि रखूं और अधिक नहीं रखूंगा ।।२३।।

पत्तगटुप्परगाइ पनरस उवरिं न चेव ठावेमि ।
आहाराण चउण्हं, रोगे वि अ संनिहं न करे ।।२४।।

पात्रा-काचला प्रमुख सभी (तरपणीआदि) पंद्रह उपरांत नहीं रखूंगा। रात्रि भोजन विरमण व्रते-अशन, पान-खादिम-स्वादिम रूप चारों प्रकार के आहार का लेशमात्र संनिधि-रोगादिक कारण में भी नहीं रखूंगा ।।२४।।

महारोगे वि अ काढं, न करेमि निसाइ पाणीयं न पिबे ।
सायं दो घडियाणं मज्झे नीरंपि न पीबेमि ।।२५।।

महान् रोग में भी क्वाथ न करूं-उकाला पीउं नहीं, रात में जलपान करूं नहीं, शाम की सूर्यास्त के पूर्व को दो घड़ी में जल पान

भी नहीं करूंगा ।।२५।।

अहवा निच्छिआ सूरे, काले नीरं करेमि सायंकालं ।
अणाहारो सहसंनिहिं मवि नो ठावेमि वसहीए ।।२६।।

अथवा सूर्य निश्चय से दिखायी दे तब उचित अवसर पर जलपान कर लूंगा, सूर्यास्त के पूर्व चारों आहार का प्रत्याख्यान ले लूंगा। और अणाहारी औषध की संनिधि भी उपाश्रय में न रखुं न रखाऊँ ।।२६।।

तव आयारे गिण्हे, अह नियमे कहवि सत्तीए ।
ओगाहियं न कप्पइ, छट्ठाइ तवं विणा उ जोगं च ।।२७।।

तपाचार के विषय में शक्ति अनुसार नियम ग्रहण करता हूँ। छट्ठ तप किया हो, योग वहन चालु हो उसके अलावा मुझे अवग्राहित भिक्षा लेनी नहीं ।।२७।।

निव्वियतिगं च अंबिल-दुगं विणु नो करेमि विगय महं ।
विगइ दिणे खंडाइ-णकारनियमो अ जाजीवं ।।२८।।

लागलगाट तीन निवी या दो आयंबिल किये बिना मैं विगइ नहीं वापरूंगा। और वापरूं उस समय दूध में खांड प्रमुख संयोग करके नहीं वापरने का नियम जाव जीव का ग्रहण करता हूँ ।।२८।।

निव्वियाइं न गिण्हे, निव्वियतिगमज्झि विगइदिवसे अ ।
विगइ नो गिण्हेमि य, दुन्नि दिणे कारणं मुत्तुं ।।२९।।

तीन निवी लागट हो तो भी विगई में निवियाता ग्रहण करूं नहीं दो दिन एक साथ पुष्ट कारण बिना विगइ वापरूं नहीं ।।२९।।

अट्ठमी चउद्दसीसुं, करे अहं निव्वियाइं तिन्नेव ।
अंबिलदुगं च कुव्वे, उववासं वा जहासत्तिं ।।३०।।

प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को शक्ति हो तो उपवास करूं, नहीं तो दो आयंबिल, तीन निवी करूंगा ।।३०।।

दव्वखित्ताइगया, दिणे दिणे अभिग्गहा गहेअव्वा ।
जीयम्मि जओ भणिअं, पच्छित्तमभिभिग्गहाभावे ।।३१।।

प्रतिदिन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से अभिग्रह धारण करना, क्योंकि अभिग्रह धारण न करे तो प्रायश्चित्त आवे ऐसा जित कल्प में लिखा है ।।३१।।

विरयायारनियमे, गिण्हे केइअवि जहासत्ति ।
दिणपणगाहाइणं, अत्थं गिण्हे मणेण सया ।।३२।।

वीर्याचार संबंधी कितनेक नियम यथाशक्ति ग्रहण करता हूँ। सदा सर्वदा पांच गाथादि के अर्थ ग्रहण कर उस पर मनन चिंतन करूं ।।३२।।

पणवारं दिण मज्झे, पमाययंताण देमि हियसिक्खं ।
एगं परिठवेमि य, मत्तयं सव्व साहूणं ।।३३।।

दिन में प्रमादाचरण करने वाले साधु को पांच बार हित शिक्षा दूंगा। और सभी साधुओं का एक मात्रक (परठने का भाजन) परठुं।।३३।।

चउवीसं वीसं वा, लोगस्स करेमि काउस्सग्गम्मि ।
कम्मखयट्ठा पइदिणं, सज्झायं वा वि तम्मित्तं ।।३४।।

प्रतिदिन कर्मक्षयार्थे चोवीस या वीस लोगस्स का कायोत्सर्ग करूं अथवा उतने प्रमाण में स्वाध्याय ध्यान कायोत्सर्ग में स्थित रह कर करूं ।।३४।।

निद्दाइपमायेणं, मंडलिभंगे करेमि अंबिलयं ।
नियमा करेमि एगं, विस्सामणयं च साहूणं ।।३५।।

निद्रादिक प्रमाद से मंडली का भंग हो जाय अर्थात् मांडली के समय में उपस्थित न रहूँ तो एक आयंबिल करूं और सब साधुओं की एक बार तो वेयावच्च निश्चय करूं ।।३५।।

सेह-गिलाणाइणं विणावि संघाडयाइसंबंधं ।
पडिलेहणमल्लगपरि-ठवणाइं कुव्वे जहासत्ति ।।३६।।

संघाडादिक का संबंध न हो तो भी लघु शिष्य (बाल) और ग्लान साधु प्रमुख की पडिलेहण आदि करूंगा! उनके मात्रक आदि परठने का कार्य भी यथाशक्ति करूंगा ।।३६।।

वसही पवेसि निग्गमि-निसीहि-आवस्सियाण विस्सरणे ।
पायाऽपमज्जणे वि य, तत्थेव कहेमि नवकारं ।।३७।।

वसति में प्रवेश करते 'निस्सीहि' और निकलते 'आवस्सहि' कहना भूल जाऊँ और गाम में प्रवेश करते निकलते पैर पूंजना भूल जाऊँ तो याद आते ही उसी स्थल पर पांच नवकार गिनुं ।।३७।।

भयवं पसाउ करिउं, इच्छाइ अभासणम्मि वुड्ढेसु ।
इच्छाकाराऽकरणे, लहुसु साहूसु कज्जेसु ।।३८।।
सव्वत्थवि खलिएसु, मिच्छाकारस्स अकरेण तह य ।
सयमन्नाउ विसरिए, कहियव्वो पंच नवकारो ।।३९।।

कार्य प्रसंगे ज्येष्ठ साधुओं को 'हे भगवन्! पसाय करी' और लघु साधु को 'इच्छकार' इच्छानुसार करे ऐसा कहना भूल जाऊँ तो और सभी क्रिया में जब-जब भूल हो जाय तब मिथ्याकार 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहना भूल जाऊँ तो जब याद आये या कोई याद करावे तब पांच नवकार गीनूंगा ।।३८-३९।।

वुड्ढस्स विणा पुच्छं, विसेसवत्थुं न देमि गिण्हे वा ।
अन्नं पि य महकज्जं, वुड्ढं पुच्छिय करेमि सया ।।४०।।

बड़े मुनिभगवंत को पूछे बिना विशेष वस्त्र लेना देना नहीं करूंगा, बड़े कार्य बड़े मुनि् भगवंत को पूछकर ही करूंगा, पूछे बिना नहीं करूंगा ।।४०।।

दुष्बलसंघयणाण वि, ए ए नियमा सुहावहा पायं ।
किंचि वि वेरग्गेणं, गिहिवासो छड्डियो जेहिं ।।४१।।

दुर्बल संघयण वाले मुनियों ने 'किंचित् वैराग्य भाव से गृहस्थावास छोड़ा है उनके लिए ऊपर दर्शित नियम का पालन प्रायः सुलभ है ।।४१।।

संपइकाले वि इमं, काउं सक्के करेइ नो नियमे ।
सो साहत्त-गिहित्तण उभयभट्ठो मुणेयव्वो ।।४२।।

संप्रति वर्तमान समय में सुख पूर्वक पाले जा सके ऐसे ये नियम जो ग्रहण न करे-पालन न करे तो वह उभयभ्रष्ट हुआ समझना ।।४२।।

जस्स हिअयम्मि भावो, थोवो वि न होइ नियमणहणंमि ।
तस्स कहणं निरत्थय मसिरावणि कूवखणणं व ।।४३।।

जिनके हृदय में उपरोक्त नियम ग्रहण करने के किंचित् भी भाव न हो, उनके इन नियम संबंधी उपदेश करना यह सर बिना के स्थल पर कूप खोदने जैसा निरर्थक निष्फल है ।।४३।।

संघयण-काल-बल-दूसमा-रयालंबणाइं घितूणं ।
सव्वं चिअ निअमधुरं, निरुज्जमाओ पमुच्चंति ।।४४।।

निर्बल संघयण, काल, बल और दुषम आरे आदि के आलंबन लेकर पुरुषार्थ से रहित पामर आत्मा प्रमाद से सभी नियम धूरा को छोड़ देते हैं ।।४४।।

वुछिन्नो जिणकप्पो, पडिमाकप्पो अ संपइ नत्थि ।
सुद्धो अ थेरकप्पो, संघयणाइण हाणीए ।।४५।।
तहवि जइ एअ नियमा-राहणपिविहिए जएज्ज चरणम्मि ।
सम्ममुवउत्तचित्तो, तो नियमाराहगो होइ ।।४६।।

वर्तमान में जिन कल्प व्युच्छिन्न है, प्रतिमा कल्प सांप्रत में नहीं है और संघयणादि की हानि से शुद्ध स्थविर कल्प भी पाल नहीं सकते तो भी जो मुनि को उपरोक्त नियमों का आराधन विधि पूर्वक, सम्यग् उपयुक्त चित्तवान् होकर, चारित्र सेवन में, पालन में उद्यमवंत बनेगा तो वह निश्चय आराधक भाव को पायेगा ।।४५-४६।।

ए ए सव्वे नियमा, जे सम्मं पालयंति वेरग्गा ।
तेसिं दिक्खा गहिया, सफला सिवसुहफलं देइ ।।४७।।

इन उपरोक्त और दूसरे भी साध्वाचार के नियमों का वैराग्य पूर्वक सम्यग् रीति से पालन करता है, आराधना करता है तो उनकी ग्रहण की हुई प्रवज्या दीक्षा सफल है, शिव सुख फल को देने वाली (देती है) है ।।४७।।

श्री इरियावहि कुलकं

नमवि सिरिवद्धमाणस्स पयपंकयं,
भवियजिअभरगणनिच्चपरिसेवियं ।
चउरगइजीवजोणीणं खामणकए,
भणिमु कुलयं अहं निसुणिअं जह सुए ।।१।।

भव्य जीव रूपी भ्रमरों के समूह से नित्य सेवित श्री महावीर प्रभु के चरण कमल में नमन कर चारों गति के जीवयोनि में रहे हुए सर्व जीवों से क्षमापना करने के लिए जैसे सिद्धांत में सुना है वैसा कुलक के माध्यम से कहूंगा ।।१।।

नारयाणं जिआ सत्तनरय[प्प] ब्भवा,
अपज्जपज्जत्तभेएहिं चउदस धूवा ।
पुढविअपतेयवाउवणस्सइणं तया,
पंच ते सुहूम थूला य दस हुंतया ।।२।।

सात नरक पृथ्वी के भेद से नरक के जीवों के सात भेद वे पर्याप्ता अपर्याप्ता के भेद से नरक जीवों के १४ भेद हुए ।

तिर्यंच में पृथ्वी काय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, साधारण वनस्पतिकाय ये पांच सूक्ष्म और बादर भेद से १० भेद हुए।

अपज्जपज्जत्तभेएहिं वीसं भवे, अपज्जपज्जत्त पत्तेयवणस्सइ दुवे। एवमेगिंदिया वीस दोजुत्तया, अपजपजबिंदि तेइंदि चउरिंदिया।।३।।

ऊपर के कहे हुए दस भेद अपर्याप्ता और पर्याप्ता के भेद से वीस भेद हुए; प्रत्येक वनस्पतिकाय के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद इस प्रकार एकेन्द्रिय के बाईस भेद हुए। पर्याप्त, अपर्याप्त दो-तीन-चार इंद्रिय वाले मिलकर विकलेन्द्रिय के ६ भेद हुए ।।३।।

नीरथलखेअरा उरगपरिसप्पया,
भुजगपरिसप्प्प सन्निऽसन्निपंचिंदिया ।
दसवि ते पज्जअपज्जत्तवीसं कया,
तिरिय सव्वेऽडयालीस भेया मया ।।४।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय उन प्रत्येक के जलचर, स्थलचर, खेचर, उरः परिसर्प और भुजपरिसर्प ये पांच पांच भेद होने से दशभेद हुए और वे पर्याप्त, अपर्याप्त के भेद से वीस भेद हुए। इस प्रकार २२+६+२०=४८ अडतालीस भेद तीर्यंच गति के कहे है ।।४।।

पंचदसकम्मभूमी य सुविसालया,
तीस अकम्मभूमी अ सुहकारया।
अंतरदीव तह पवर छप्पण्णयं,
मिलिय सयमहियमेगेणनरठाणयं ।।५।।

सुविशाल पंद्रह कर्मभूमि, एकांते जहां सुख ही है वे तीस अकर्मभूमि और छप्पन अंतरद्वीप ऐसे मनुष्य के उत्पन्न होने के एकसो एक भेद ।।५।।

तत्थ अपज्जत्तपज्जत्तनरगब्भया,
वंतपित्ताइअसन्निअपजत्तया ।
मिलियसव्वे वि ते तिसय तिउत्तरा,
मणुयजम्मम्मि इम हुंति विविहप्पयरा ।।६।।

वे पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे दो भेद वाले गर्भज मनुष्य होने से २०२ भेद हुए, अब उन मानवों के वमन पित्तादिक अशुचि भरे चौदह स्थान में उत्पन्न होने वाले अपर्याप्त संमूर्च्छिम मनुष्य के १०१ भेद। इस प्रकार सभी मिलकर मानव गति के ३०३ भेद हुए।

भवणवइदेवदस पन्नर परमाहम्मिया,
जंभगा दस य तह सोल वंतरगया ।
चर-थिरा जोइसा चंद सूरा गहा,
तह य नक्खत्त तारा दस भावहा ।।७।।

देवों में भवनपति के दश, परमाधार्मिक के पंद्रह, तिर्यंगजृंभक के दश और व्यंतर के सोलह, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पांच स्थिर मिलकर ज्योतिष के दश भेद हुए ।।७।।

किब्बिसा तिण्णि सुर बार वेमाणिया,
भेय नव नव य गेविज्ज लोगंतिया ।
पंच अणुत्तरा सुरवरा ते जुया,
एगहीणं सयं देव देवी जुया ।।८।।

किल्बिब देव के तीन भेद, वैमानिक के बारह भेद, ग्रैवेयक के नव भेद, लोकान्तिक के नव भेद और अनुत्तर के पांच भेद इन सब के १०+१५+१०+१६+१०+३+१२+९+९+५=९९ निन्यानवे भेद हुए।

अपज्जपज्जत्तभेएहिं सयट्ठाणुआ,
भवणवणजोइ वेमाणिया मिलिया ।
अहिअ तेसट्ठी सवि हुंति पणसया,
अभिहयापयदसगुणिअ जाया तया ।।९।।

ये निन्यानवें पर्याप्त और अपर्याप्त मिलकर, भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक इन चारों का मिलकर १९८ भेद हुए। इस प्रकार १४+४८+३०३+१९८=५६३ भेद चारों गति के जीवों के हुए। उन की विराधना अभिहयादिक दश पदों से गुनने से ।।९।।

पंचसहसा छसय भेय तीसाहिया,
रागदोसेहिं ते सहस एगारसा।
दुसयसट्टी त्ति मणवयणकाए पुणो
सहस तेतीस सयसत्तअसिइ घणो ।।१०।।

पांच हजार छसो और तीसभेद हुए, उनको राग-द्वेष से गुणने पर ग्यारह हजार दोसो साठभेद हुए, उनको मन वचन काया से गुनने पर तैतीस हजार सातसो ऐंशी भेद हुए ।।१०।।

करणकारणअणुमइ (इ) संजोडिया,
एगलखसहसइग तिसयचालीसया ।

कालतियगणिय तिन्निलक्खचउसहसया,
वीसहिअ इरिअ मिच्छा मि दुक्कडं पया ।।११।।

और करना, कराना और अनुमोदन करना इन तीन करण से गुणने पर एक लाख एक हजार तीन सो और चालीस भेद होते है और उनको तीन काल से गुनने पर तीन लाख, चार हजार, वीश भेद होते है। इनके प्रत्येक प्रकार से मिच्छा मि दुक्कडं देने से इरियावहि के मिच्छा मि दुक्कडं के उतने स्थान होते है।

दूसरे ग्रंथो में इन भेदों को (३०४०२०) छ साक्षी से गुनने से १८२४१२० भांगे भी 'मिच्छा मि दुक्कडं' के होते है। विचार सार प्रकरण में तो राग-द्वेष से पाप हुआ हो उससे भी गुना कर ३६४८२४० भांगे इरियावहि के बताये हैं।

इणि परिचउरगइमांहि जे जीवया,
कम्मपरिपाकिनवनविय जोणीठिया ।
ताह सव्वाह कर करिय सिर उप्परे,
देमि मिच्छा मि दुक्कडं बहु बहु परे ।।१२।।

इस प्रकार स्व-स्व कर्म विपाकानुसार अन्य अन्य जातियों योनियों में चारों गति में जो जीव रहे हुए है उन प्रत्येक को मैं मस्तक पर हाथ जोडकर अनेकानेक बार मिच्छा मि दुक्कडं देता हूँ।।

इअ जिअ विविहप्परि मिच्छा-मि-दुक्कडि,
करिहि जि भविया सुटठुमणा ।
ति छिंदिय भवदुह पामिअ सुरसुहं,
सिद्धिनयरि सुहं लहइ धणा ।।१३।।

इस प्रकार जो भविक जीव शुद्ध मन से विविध प्रकार के जीवों के प्रति मिथ्या दुष्कृत करते हैं, वे संसार के दुःखों का छेदनकर बिच में देवलोक के सुखों का उपभोग कर अंत में मोक्षनगरी का अनंत सुख प्राप्त करते हैं ।।१३।।

श्री कर्म कुलकम्

तेलुक्किक्कस्स मल्लस्स, महावीरस्स दारुणा।
उवसग्गा कहंहुंता, न हुंतं जइ कंमयं ।।१।।

तीन लोक में अद्वितिय मल्ल ऐसे श्री महावीर प्रभु को भी भयंकर उपसर्ग हुए वे जो कर्म न होते तो कैसे होते? ।।१।।

वीरस्स मेंढि (मिनु) यग्गामे, केवललिस्सावि दारूणो ।
अइसारो कहं हुंतो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।२।।

जो कर्म न होते तो श्री महावीर प्रभु को केवलज्ञान तीर्थंकर नाम कर्म के उदय होने के बाद भी मेंढिय ग्राम में भयंकर अतिसार कैसे होता? (गोशाले का उपसर्ग) ।।२।।

वीरस्स अट्ठिढयग्गामे, जक्खाओ सूलपाणिणो ।
वेयणाओ कहं हुंति, न हुंतं जइ कम्मयं ।।३।।

कर्म का अस्तित्व जो न होता तो अस्थिक ग्राम में शूलपाणि यक्ष से समर्थ वीर भगवंत को वेदना हुई वह कैसे होती? ।।३।।

दारूणाओ सलागाओ, कन्नेसुं वीरसामिणो ।
पक्खिवंतो कहं गोवो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।४।।

जो वैसे कर्म न होते तो श्री महावीर भगवंत के कानों में गोवालिया खीलियाँ कैसे ठोक सकता था? ।।४।।

वीसं वीरस्स उवसग्गा, जिणिंदस्सावि दारूणा ।
संगमाओ कहं हुंता, न हुंतं जइ कम्मयं ।।५।।

जो कर्म न होते तो (अंगुठे से मेरुपर्वत चलाने की शक्ति धारक देवेन्द्र द्वारा सेवा में देव को रखने के पश्चात् भी) जिनेन्द्र श्री वीर स्वामी पर एक रात में २० उपसर्ग और छ महिने तक आहार पानी के अंतराय तक के कष्ट कैसे होते? ।।५।।

गयसुकुमाल (स्स) सीसम्मि, खाइरंगारसंचयं ।
पक्खिवंतो कहं भट्टो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।६।।

जो कर्म न होते तो गजसुकुमाल के मस्तक पर खेर के जलते अंगारे सोमिल ब्राह्मण कैसे भरता? ।।६।।

सीसा उ खंदगस्सावि, पीलिज्जंता तया कहं ।

जं तेण पालएणावि, न हुंतं जइ कम्मयं ।।७।।

जो क़र्म न होते तो उस समय खंधक ऋषि के शिष्य यंत्र में कैसे पीले जाते? ।।७।।

सणंकुमारपामुक्ख-चक्किणो वि सुसाहूणो ।
वेयणाओ कहं हुंता, न हुंतं जइ कम्मयं ।।८।।

जो कर्म न होते तो सनत्कुमार चक्रवर्ती आदि उत्तम साधुओं को जो वेदनाएँ हुई वे कैसे होती? ।।८।।

कोसंबीए नियंठस्स, दारूणा अच्छिवेयणा ।
धणिणो वि कहं हुंता, न हुंतं जइ कम्मयं ।।९।।

जो कर्म मानने में न आवे तो कोशंबी नगरी के श्रीमंताई युक श्रेष्ठि पुत्र को भयंकर नेत्र पीड़ा कैसे उत्पन्न हुई। जो अनाथी निर्गंथ मुनिके नाम से प्रख्यात बनें।।९।।

नमिस्संतो महादाहो, नरिंदस्सावि दारूणो ।
महिलाए कहं हुंतो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१०।।

अंतर में महादाह से पीडित नमिराजर्षि को अपनी महारानियों के कंकणों का आवाज भी सहन न हुआ यह कर्म न होते तो कैसे होता?।।१०।।

अंधत्तं बंभदत्तस्स सुदेहस्सावि दुस्सहं ।
चक्किस्सावि कहं हुंतं, न हुंतं जइ कम्मयं ।।११।।

सुंदर शरीर वाले ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को भी जो कर्म न होते तो अंधत्व कैसे प्राप्त होता? ।।११।।

नीयगुत्ते जिणिंदो वि, भूरिपुण्णो वि भारहे ।
उपज्जंतो कहं वीरो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१२।।

अतीव पुण्य के धनी श्री महावीर परमात्मा इस भरत क्षेत्र में नीच गोत्र में उत्पन्न हुए यह कर्म न होते तो कैसे होता? ।।१२।।

अवंतीसुकुमालो वि उज्जेणीए महायसो ।
कहं सिवाइ खज्जंतो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१३।।

उज्जयिनी नगरी में महा यशवाले अवंती सुकुमाल का शियालणी के द्वारा भक्षण हुआ यह कर्म न होते तो कैसे होता?।।१३।।

सइए सुद्धशीलाए, भत्तारा पंच पांडवा ।

दोवइए कहं हुंता, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१४।।

पवित्र शीलवाली सती द्रोपदी के पांच पति पांडव बने यह कर्म न होते तो कैसे होता? ।।१४।।

मियापुत्ताइजीवाणं, कुलीणाण वि तारिसं ।
महादुक्खं कहं हुंतं, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१५।।

कुलीन ऐसा भी मृगापुत्र आदि अनेक जीवों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़े वे वैसे कर्म के बिना कैसे होता? ।।१५।।

वसुदेवाइणं हिंडी रायवंसोब्भवाण वि ।
तारुण्णे वि कहं हुंता न हुंतं जइ कम्मयं ।।१६।।

जो कर्म न होते तो राजवंश में उत्पन्न वसुदेवादि को यौवनावस्था में कैसे घूमना पड़ता? ।।१६।।

वासुदेवस्स पुत्तो वि, नेमिसीसो वि ढंढणो ।
अलाभिल्लो कहं हुंतो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१७।।

वासुदेव के पुत्र और श्री नेमिनाथ भगवंत के शिष्य होने पर भी ढंढण ऋषि को (द्वारका जैसी नगरी में) छ महिने तक गोचरी शुद्ध न मिली यह कर्म न होते तो कैसे होता? ।।१७।।

नावारूढस्स उवसग्गो, वद्धमाणस्स दारूणो ।
सुदाढाओ कहं हुंतो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१८।।

जो कर्म न होते तो नाव में बैठे हुए श्री वर्द्धमान स्वामी को सुदंष्ट्र यक्ष से भयंकर उपसर्ग कैसे होता? ।।१८।।

पासनाहस्स उवसग्गो, गाढो तित्थंकरस्स वि ।
कमठाओ कहं हुंतो, न हुंतं जइ कम्मयं ।।१९।।

तीर्थंकर परमात्मा होने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान को कमठ द्वारा भारी उपसर्ग कर्म न होते तो कैसे होता? ।।१९।।

अणुत्तरा सुरा साया-सुक्खसोहग्गलीलया ।
कहं पावंति चवणं, न हुंतं जइ कम्मयं ।।२०।।

अनुत्तर विमानवासी देव, जो शातावेदनीय सुख की पूर्ण सामग्री से युक्त होने पर भी वहाँ से मृत्यु लोक में (गर्भ की वेदना सहने) आवे यह कर्म न होते तो कैसे होता? ।।२१।।

श्री दशश्रावक कुलकम्

वाणियगामपुरम्मि, आणंदो जो गिहवइ आसी ।
सिवनंदा से भज्जा, दस सहस्स गोउला चउरो ।।१।।

वाणिज्यग्राम नगर में आनंद नामक गृहस्थ जिसकी शिवानंदा पत्नी, दश हजार गायों का एक गोकुल ऐसे उसके चार गोकुल थे।।१।।

निहिविवहारकलंतर ठाणेसुं, कणयकोडिबारसगं ।
सो सिरिवीरजिणेसर-पयमूले सावओ जाओ ।।२।।

उसके पास भंडार में, व्यापार में, और व्याज में ऐसे सभी मिलकर बारह क्रोड स्वर्ण महोरे थी। वह आनंद नामका गाथापति श्री महावीर प्रभु का चरण सेवक महाश्रावक हुआ ।।२।।

चंपाइ कामदेवो, भद्दाभज्जो सुसावओ जाओ ।
छग्गोउल अट्ठारस, कवणकोडीण जो सामी ।।३।।

चंपा नगरी में कामदेव नामक वीरविभु का सुश्रावक जिसकी भद्रा स्त्री और उसके पास छ गोकूल और १८ करोड स्वर्ण मुद्राएँ थी ।।३।।

कासीए चुलणिपिया, सामा भज्जा य गोकला अट्ठ ।
चउवीस कणय कोडी, सड्ढाण सिरोमणी जाओ ।।४।।

काशी में श्रावक शिरोमणी चुलनी पिता प्रभु वीर का श्रावक, श्यामा स्त्री, ८गोकुल और चौवीस करोड स्वर्ण मुद्राओं का स्वामी था ।।४।।

कासीइ सूरदेवो, धन्ना भज्जा य गोउला छच्च ।
कणयट्ठारसकोडी गहीयवओ सावओ जाओ ।।५।।

काशी में सुरदेव नामक गृहस्थ था उसकी धन्या स्त्री, छ गोकुल, १८ करोड स्वर्ण मुद्राओं का स्वामी व्रत ग्रहणकर वीर विभु का श्रावक हुआ ।।५।।

आलंभिया नयरीए, नामेणं चुल्लसयगओ सड्ढो ।
बहुला नामेण पिया, रिद्धी से कामदेव समा ।।६।।

आलंभिका नगरी का चुल्लशतक नामक वीरविभु का श्रावक, उसकी बहुला स्त्री, कामदेव के समान ऋद्धि वाला था ।।६।।

कंपिल्लपट्टणम्मि सड्ढो नामेण कुंडकोलियओ ।
पुस्सा पुण जस्स पिया, विहवो सिरि कामदेव समो ।।७।।

कांपिल्यपुर में कुंडकौलिक नामक श्री महावीर का श्रावक, उसकी पुष्पा स्त्री, और वैभव कामदेव समान था ।।७।।

सद्दालपुत्तनामो, पोलासम्मि कुलालजाइओ ।
भज्जा य अग्गिमित्ता, कंचणकोडीण से तिन्नि ।।८।।

सद्दालपुत्र नामक श्रीमहावीर का श्रावक पोलासपुर का कुंभार जाति का, उसकी पत्नी अग्निमित्रा और तीन करोड स्वर्ण मुद्राएँ थी ।।८।।

चउवीस कणयकोडी, गोउल अट्ठेव रायगिहनगरे ।
सयगो भज्जा तेरस, रेवइ अड सेस कोडीओ ।।९।।

चौवीस करोड सोनैये, आठ गोकुल युक्त राजगृहीनगरी काशतक श्रावक, तेरह पत्नी उसमें रेवती आठ करोड और शेष एक एक करोड लेकर आयी थी ।।९।।

सावत्थी नयरीए नंदणिपिय नाम सड्ढओ जाओ ।
अस्सिणि नामा भज्जा, आणंदसमो य रिद्धीए ।।१०।।

श्रावस्ती नगरी में नन्दनी प्रिय नामे श्री महावीर का श्रावक, अश्वीनी उसकी स्त्री, आनंद श्रावक के समान ऋद्धि वाला ।।१०।।

सावत्थी वत्थव्वो, लंतगपिय सावगो य (जो प) वरो ।
फग्गुणिनाम कलत्तो, जाओ आणंद सम विहवो ।।११।।

श्रावस्ती नयरी में लांतक प्रिय नामक श्री महावीर प्रभु का उत्तम श्रावक था, फल्गुनी उसकी स्त्री और ऋद्धि आनंद श्रावक समान थी ।।११।।

इक्कारस पडिमधरा, सवि सिरिवरि पयकमलभत्ता ।
सव्वे वि सम्मदिट्ठ, बारसवयधारया सव्वे ।।१२।।

ये सभी श्रावक श्रावक की बारह प्रतिमा धारक, श्री महावीर प्रभु के चरण कमल को सेवने वाले सम्यग्दृष्टि और बारह व्रत के धारण करने वाले थे ।।१२।।

[एकभव देवलोक का कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष में जानेवाले हैं।]

श्री गुरुप्रदक्षिणा कुलकम

गोअमसुहम्मजंबुपभवोसिज्जंभवाइआयरिया ।
अन्नेवि जुगप्पहाणा, तइं दिट्ठे सुगुरु ते दिट्ठा ।।१।।

हे सद्गुरु भगवंत! आपके दर्शन होने पर श्रीगौतमस्वामी, श्री सुधर्मास्वामी, श्रीजंबूस्वामी, श्रीप्रभवस्वामी और श्रीशय्यंभवाचार्य आदि आचार्य भगवंत एवं अन्य भी युगप्रधान आचार्यों के दर्शन किये ऐसा मानता हूँ ।।१।।

अज्ज कयत्थो जम्मो, अज्ज कयत्थं च जीवियं मज्झ ।
जेण तुह दंसणामय-रसेण सित्ताइं नयणाइं ।।२।।

आज मेरा जन्म कृतार्थ हुआ, आज मेरा जन्म सफल हुआ, कि जिससे आपके दर्शन रूपी अमृत रस से मेरे नेत्र सिंचित हुए। (अर्थात् आपका अद्भूत दर्शन मुझे प्राप्त हुआ) ।।२।।

सो देसो तं नगरं, सो गामो सो अ आसमो धन्नो ।
जत्थ पहु तुम्ह पाया, विहरंति सया वि सुपसन्ना ।।३।।

वह देश, वह नगर, वह गाम और वह आश्रम (स्थान) धन्य है कि जहाँ हे प्रभु! आप नित्य सुप्रसन्नता पूर्वक विहार करते हो।।३।।

हत्था ते सुकयत्था जे किइकम्मं कुणंति तुह चलणे।
वाणी बहुगुणखाणी, सुगुरुगुणा वण्णिआ जीए ।।४।।

वे हाथ सुकृतार्थ है कि जिन हाथों ने आपके चरणो में द्वादशवर्त वंदन किया है और वह जिह्वा अत्यंत गुणवाली है कि जिससे सद्गुरु के गुणों का वर्णन किया हुआ है ।।४।।

अवयरिया सुरधेणू संजाया महगिहे कणयवुट्ठी ।
दारिद्दं अज्जगयं, दिट्ठे तुह सुगुरु मुहकमले ।।५।।

हे सद्गुरु! आपका मुखकमल दिखाई देने पर आज कामधेनु मेरे गृहांगन में अवतरित हुई, सुवर्ण वृष्टि हो गयी और मेरा दारिद्र दूर हो गया ऐसा मानता हूँ ।।५।।

चिंतामणिसारिच्छं, सम्मत्तं पावियं मए अज्ज ।
संसारो दूरिकओ, दिट्ठे तुह सुगुरुमुहकमले ।।६।।

हे सद्गुरु! आपका मुखकमल दृष्टि पथ पर आने पर चिंतामणि

रत्न समान सम्यग्रत्न मुझे प्राप्त हुआ और उससे मेरे संसार का अंत हुआ ऐसा मानता हूँ ।।६।।

जा रिद्धि अमरगुणा, भुंजंता पियतमाइसंजुत्ता ।
सा पुण कित्तियमित्ता, दिट्ठे तुह सुगुरुमुहकमले ।।७।।

हे सद्गुरु! आपका मुख कमल देखने से जो रिद्धि देवगण स्व देवांगनाओं के साथ भोगते हैं वह भी मेरे लिए किसी हिसाब में नही है ।।७।।

मणवयकाएहिं मए, जं पावं अज्जियं सया (भयवं) ।
तं सयं अज्जगयं, दिट्ठे तुह सुगुरु मुहकमले ।।८।।

हे सद्गुरु! आपका वदनकमल देखते ही आज दिन पर्यंत के मेरे मन, वचन और काया द्वारा अर्जित पाप स्वतः नष्ट हो गये है। ऐसा मैं मानता हूँ ।।८।।

दुल्लहो जिणिंदधम्मो, दुल्लहो जीवाण माणुसो जम्मो ।
लद्धेपि मणुअजम्मे, अइदुल्लहा सुगुरुसामग्गी ।।९।।

जीवों को सर्वज्ञ भाषित धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है, और मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है और ये मिलने के बाद भी सद्गुरु का योग मिलना अत्यंत दुर्लभ है ।।९।।

जत्थ न दीसंति गुरु, पच्चूसे उट्ठिएहिं सुपसन्ना।
तत्थ कहं जाणिज्जइ, जिणवयणं अमिअसारिच्छं ।।१०।।

जहां ब्राह्ममुहूर्त में उठने पर सुप्रसन्न सद्गुरु के दर्शन नही होते वहां अमृत सदृश जिनवाणी का लाभ कैसे प्राप्त हो सके? ।।१०।।

जए पाउसंमि मोरा, दिणयरउदयम्मि कमलवणसंडा ।
विहसंति तेम तच्चिय, तह अम्हे दंसणे तुम्ह ।।११।।

जैसे मेघ को देखकर मयुर प्रमुदित होता है, सूर्य को देखते ही कमलवन विकसीत होता है, वैसे आप का मुख दर्शन करते ही हम प्रमुदित होते है ।।११।।

जइ सरइ सुरहिं वच्छो, वसंतमासं च कोइला सरइ ।
विंझं सरइ गइंदो, तह अम्ह मणं तुमं सरइ ।।१२।।

हे सद्गुरु! जैसे गौ अपने वत्स को याद करती है, कोयल वसंतमास की इच्छा करती है, गज विंध्याचल अटवी को याद करता है वैसे ही हमारा मन नित्य आपका स्मरण करता रहता है।।१२।।

बहुयाँ-बहुयाँ दिवसडा, जइ-मइं सुहगुरु दीठ ।
लोचन बे विकसी रह्यां, हीअडइं अमिय पइठ ।।१३।।

बहुत-बहुत दिन चले गये और अब मैंने सुगुरु को देखे, जिससे मेरी दोनों आंखे विकस्वर हुई और मेरे हृदय में अमृत प्रवेशित हुआ ।।१३।।

अहो ते निज्जिओ कोहो, अहो माणो पराजिओ ।
अहो ते निक्खिया माया, अहो लोहो वसीक्किओ ।।१४।।

अहो! आपने क्रोध पर विजय, मान का पराजय, माया को दूर कर दी और लोभ को वश कर दीया है ।।१४।।

अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं ।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा ।।१५।।

अहो! आपकी सरलता कितनी सुंदर है। अहो! आपकी नम्रता कितनी अच्छी है। अहो! आपकी क्षमा कैसी उत्तम है। और अहो! आपकी संतोषवृत्ति कितनी श्रेष्ठ है ।।१५।।

इहं सि उत्तमो भंते, पच्छा होहिसी उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धि गच्छसि निरओ ।।१६।।

हे सद्गुरु भगवंत! आप यहाँ प्रकट रूप में उत्तम हो, आप आनेवाले भवों में उत्तम होने वाले है और अंत में कर्म मल का प्रक्षालन कर मोक्ष नामक सर्वोत्तम स्थान ही प्राप्त करने वाले है।।१६।।

आयरियनमुक्कारो, जीवं मोएइ भवसहस्साओ ।
भावेण किरमाणो, होइ पुणो बोहिलाभाए ।।१७।।

आचार्य भगवंत को किया हुआ नमस्कार जीव को हजारो भवों से मुक्त करता है, और वैसे शुभभाव से किया हुआ नमस्कार जीव को सम्यग्रत्न प्राप्त करवाता है ।।१७।।

आयरियनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, तइयं हवइ मंगलं ।।१८।।

भावाचार्य को भावसहित किया हुआ नमस्कार सर्व पाप का प्रकर्षता से नाश करनेवाला होता है और वह सर्व मंगलों में तीसरा मंगल है ।।१८।।

अभव्य कुलकम्

जह अभवियजीवेहिं, न फासिया एवमाइया भावा ।
इंदत्तमणुत्तरसुर-सिलायनर-नारयत्तं च ।।१।।

अभव्य जीवों को इस प्रकार आगे कहने में आयेंगे उन भावों की उन भवों की प्राप्ति नही हुई है। (१) इंद्रपना, (२) अनुत्तर वासी देवपना, (३) त्रिषष्ठि शलाका पुरुष पना, (४) नव नारद पना ।।१।।

केवलिगणहरहत्थे पव्वज्जा तित्थवच्छरं दाणं ।
पवयणसूरी-सुरत्तं, लोगंतियदेवसामित्तं ।।२।।

(५) केवली एवं गणधर हस्ते दीक्षा, (६) तीर्थंकर का वार्षिक दान, (७) प्रवचन देवी-देव पना, (८) लोकांतिक देव पना, (९)लोकांतिक देवेन्द्र पना ।।२।।

तायत्तीससुस्तं, परमाहम्मिय-जुयलमणुअत्तं ।
संभिन्नसोयं तह, पुव्वधराहारयपुलायत्तं ।।३।।

(१०) त्रायत्रिंशक देवपना, (११) पंद्रह जाति के परमाधामी पना, (१२) युगलिक मानव पना, (१३) संभिन्न श्रोत लब्धि, (१४) पूर्वधर लब्धि, (१५) आहारक लब्धि, (१६) पुलाक लब्धि ।।३।।

मइनाणाइ सुलद्धी, सुपत्तदाणं समाहिमरणत्तं ।
चारणदुगमहुसप्पिय-खीरासवखीणठाणत्तं ।।४।।

(१७) मतिज्ञान-श्रुतज्ञानादि लब्धि, (१८) सुपात्रदान, (१९) समाधिमरण, (२०) विद्याचारण लब्धि, (२१) जंघाचारण लब्धि, (२२) मधुसर्पि लब्धि, (२३) क्षीराश्रवलब्धि, (२४) अक्षिणमाणसी लब्धि ।।४।।

तित्थयर तित्थपडिमा तणुपरिभोगाइ-कारणे वि पुणो।
पुढवाइ भावम्मि वि अभव्वजीवेहिं नो पत्तं ।।५।।

(२५) तीर्थंकर पना, (२६) तीर्थंकर प्रतिमा के उपयोग में आवे वैसे किसी पदार्थ की भी प्राप्ति नही होती ।।५।।

चउदसरयणत्तं पि पत्तं न पुणो विमाणसामित्तं।
सम्मत्तनाण संयम-त्तवाइभावा न भावदुगे ।।६।।

(२७) चौद रत्न पना, (२८) विमान का स्वामी पना, (२९) सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र बाह्य-अभ्यंतर तप ये दो भाव भी न पाये ।।६।।

अणुभवजुत्ताभत्ती, जिणाणं साहम्मियाण वच्छल्लं ।
न य साहेइ अभव्वो, संविगत्तं न सुक्कपक्खं ।।७।।

(३०) जिनेश्वर की अनुभव युक्त भक्ति, (३१) साधर्मिक की भाव पूर्वक भक्ति, (३२) संसार से विराग, (३३) शुक्लपक्षी पना भी न पाये ।।७।।

जिणजणयजणणिजाया जिन जक्खाजक्खणी जुगपहाणा ।
आयरियपयाइ दसगं, परमत्थगुणड्ढमप्पत्तं ।।८।।

(३४) जिनेश्वर के माता-पिता, (३५) स्त्री, (३६) यक्ष, (३७) यक्षिणी, (३८) युगप्रधान पना भी न मिले (४०) आचार्यादि दश का विनय (४१) परमार्थ से अधिक गुणवंत पना भी न मिले।।८।।

अणुबंधहेउसरूवा, तत्थ अहिंसा तिहा जिणुदिट्ठा ।
दव्वेण य भावेण य, दुहावि तेसिं न संपत्ता ।।९।।

(४२) और अभव्यजीव अनुबंध, हेतु और स्वरूप ऐसी तीन प्रकार की श्री जिनेश्वर प्ररूपित अहिंसा द्रव्य और भाव ऐसे दो भेद से न पा सके ।।९।।

इस प्रकार अभव्यजीव ४२ भेद को प्राप्त नही कर सकता।

श्री आत्मावबोध कुलकम्

धम्मप्पहारमणिज्जे, पणमित्तु जिणे महिंद नमणिज्जे ।
अप्पावबोहकुलयं, वुच्छं भवदुहकयपलयं ।।१।।

आत्मप्रभा से रमणिय और महेन्द्रों से नमनीय ऐसे जिनेन्द्रभगवंतों को प्रणाम करके भव रूपी दुःख का प्रलय-विनाश करने वाला यह आत्मावबोध (अनुभव) कुलक कहूंगा ।।१।।

अत्तावगमो नज्जइ, सयमेव गुणेहिं किं बहुभणसि ।
सूरुदओ लक्खिज्जइ पहाइ न उ सवहनिवहेणं ।।२।।

जैसे सूर्योदय सूर्य की प्रभा से जाना जाता है। प्रभा के अलावा सोगन खाने से वह जाना नही जाता, वैसे आत्मबोध आत्मगुणों से ही अपने आप मालुम हो जाता है, परंतु आत्मगुण के बिना संख्याबंध सोगन खाने से आत्मबोध नही होता। अतः अधिक क्यों बोल रहा है?

यह श्लोक उन लोगों को सदुपदेश देता है, जो लोग आत्मगुण के प्रकटीकरण से तो दूर है परंतु आत्मा-आत्मा की रटन लगाकर जोर-जोर से आत्मा की बातें करते हैं ।।

दम-सम-समत्त-मित्ती-संवेअ-विवेअ-तिव्वनिव्वेओ ।
ए ए पगूढअप्पावबोहबीअस्स अंकुरा ।।३।।

इंद्रिय दमन, मनोविकारशमन, सम्यक्त्व, मैत्री, संवेग, और तीव्र निर्वेद ये सब आत्मबोधरूपी बीज के अंकुरें हैं ।।३।।

जो जाणइ अप्पाणं, अप्पाणं सो सुहाणं न हु कामी ।
पत्तम्मि कप्परूक्खे, रूक्खे, किं पत्थणा असणे ।।४।।

जो आत्मा को जानते हैं, वे संयोग वियोग से युक्त संसार के अल्प सुख के इच्छुक नहीं होते । जिनको कल्पवृक्ष प्राप्त हो गया हो वह असन (बीजक नामक) वृक्ष से प्रार्थना करेगा क्या? ।।४।।

निअविन्नाणे निरया, निरयाइ दुहं लहंति न कया वि ।
जो होइ मग्गलग्गो, कहं सो निवडेइ कूवम्मि ।।५।।

आत्मविज्ञान में निरंतर संलग्न ऐसा जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवलोक के दुःखों को कभी प्राप्त नही करता। कारण कि आत्मविज्ञान रूपी स्वसंवेदन रूपी सरल सडक पर चलता है, वह जीव (नरकादि जिसमें है ऐसे संसाररूपी) कूप में कैसे गिरेगा?।।५।।

तेसिं दूरे सिद्धी, रिद्धी रणरणयकारणं तेसिं ।
तेसिमपुण्णा आसा, जेसिं अप्पा न विन्नाओ ।।६।।

जिसने आत्मा को नहीं पहचाना, उसकी आशा अपूर्ण, उसके लिए रिद्धि कोशो दूर रहती है और लक्ष्मी उसके लिए दुःख का कारण बनती है ।।६।।

ता दुत्तरो भवजलही, ता दुज्जेहो महालओ मोहो ।
ता अइविसमो लोहो, जा जाओ नो निओ बोहो ।।७।।

भवसमुद्र दुस्तर वहाँ तक ही है जब तक महा विस्तार वाला महामोह दुर्जय है, और लोभ भी वहाँ तक ही विषम है जब तक आत्मबोध नही हुआ ।।७।।

जेण सुरासुरनाहा, हहा अणाहुव्व वाहिया सो वि ।
अज्झप्पझाणजलहो, पयाइ पयंगत्तणं कामो ।।८।।

अहा! जिसने सुरेन्द्र और असुरेन्द्रों को अनाथ के समान पीडित किये है, वह प्रबल कामशत्रु भी अध्यात्म ध्यान की अग्नि में पतंगिये के समान भस्म हो जाता है ।।८।।

जं बद्धं पि न चिट्ठइ, वारिज्जंतं वि सरइ असेसे (पसरइअसेसे)।
झाणबलेण तं पि हु, सयमेव विलिज्जइ चित्तं ।।९।।

जो बांधने पर भी एक स्थान पर नही रहता, वारण करने पर भी चारों ओर घूमता रहता है ऐसा दुर्जय चंचल मन भी आत्म ध्यान के बल से स्वयं शांत हो जाता है ।।९।।

बहिरंतरंगभेया, विविहा वाही न दिंति तस्स दुहं ।
गुरुवयणाओ जेणं, सुहझाणरसायणं पत्तं ।।१०।।

जिसने सद्गुरु के वचन से शुद्ध ध्यानरूपी रसायण प्राप्त किया है, उसे बहिरंग (रोगादि) और अंतरंग (काम-क्रोधादि) विविध प्रकार की व्याधियाँ दुःख नहीं दे सकती ।।१०।।

जिअमप्पचिंतणपरं, न कोइ पीडेइ अहव पीडेइ ।
ता तस्स नत्थि दुक्खं, रिणमुक्कं मन्न माणस्स ।।११।।

जो जीव आत्म चिंतन में तत्पर हो, उसे कोई पीड़ा नहीं कर सकता, अथवा पीड़ा करे तो उसे दुःख नहीं होता कारण कि वह अपने आपको दुःख मुक्त मानता है ।।११।।

दुक्खाण खाणी खलु रागदोसा, ते हुंति चित्तम्मि चलाचलम्मि।
अज्झप्पजोगेण चअेइ चित्तं, चलत्तमालाणिअ कुंजरूव्व ।।१२।।

वास्तव में राग-द्वेष ही दुःखों की खाण है, उसकी उत्पत्ति चित्त की चंचलता में होती है। जैसे स्तंभ से बंधा हाथी जाने आने रूप चपलता का त्याग करता है वैसे अध्यात्म योग से चित्त चपलता का त्याग करता है ।।१२।।

एसो मित्तममित्तं, एसो सग्गो तहेव नरओ अ ।
एसो राया रंको, अप्पा तुट्ठो अतुट्ठो वा ।।१३।।

आत्मा तुष्टमान हो तो मित्र है, स्वर्ग है, राजा है और जो अतुष्टमान हो तो शत्रु, नरक और रंक है। इस प्रकार आत्मा की उत्तम या मध्यम स्थिति से ही उत्तम या अधम परिणाम आते है।।१३।।

लद्धा सुरनररिद्धी, विसया वि सया निसेविआ जेण ।
पुण संतोसेण विणा, किं कत्थ वि निव्वुइ जाया ।।१४।।

आत्मा ने देव और मनुष्यलोक की ऋद्धि अनेक बार प्राप्त की और विषयों का आस्वाद अनेक बार लिया। फिर भी संतोष न होने से कहीं पर भी किंचित् भी शांति नहीं मिली ।।१४।।

जीव! सयं चीअ निम्मिअ-तणुधणरमणीकुटुंबनेहेणं ।
मेहेण व दिणनाहो, छाइज्जसि तेअवंतो वि ।।१५।।

जैसे तेजवंत सूर्य भी मेघ से आच्छादित हो जाता है, वैसे हे जीव! तूं लोकालोक प्रकाशक ऐसे ज्ञान रूपी प्रकाश से तेजवंत है फिर भी स्वयंने उत्पन्न किए शरीर धन, स्त्री, कुटुंब के स्नेह से आच्छादित बना है।।१५।।

जं वाहिवालवेसानराण, तुह वेरियाण साहीणे ।
देहे तत्थ ममत्तं, जिअ! कुणमाणो वि किं लहसि? ।।१६।।

यह शरीर व्याधि, सर्पादि, अग्नि आदि तेरे (बाह्यांतरंग) शत्रुओं के स्वाधीन है। उस देह पर ममत्व करने से तुझे क्या लाभ होता है? 'सोचना' ।।१६।।

वरभत्तपाणण्हाणय, सिंगारविलेवणेहिं पुट्ठो वि ।
निअपहुणो विहडंतो, सुणएण वि न सरिसो देहो ।।१७।।

उत्तम भोजन, पान, स्नान, शृंगार, विलेपनादि से शरीर का पोषण करने पर भी अपने मालिक को छोड़कर न जाने वाले श्वान के जितना गुण भी इस में नहीं है ।।१७।।

कट्ठाइं कडुअ बहुहा, जं धणमावज्जिअं तए जीव ।
कट्ठाइं तुज्झ दाउं, तं अंते गहिअमन्नेहिं ।।१८।।

हे जीव! अनेकानेक प्रकार के मन को अनिष्ट कष्ट सहनकर तूंने जो धनार्जन किया उस धन ने तुझे तो कष्ट ही दिया और तेरी मृत्यु के बाद उस धन को दूसरों ने ही ग्रहण किया ।।१८।।

जह-जह अन्नाणवसा, धणधन्न परिग्गहं बहुं कुणसि।
तह-तह लहुं निमज्जसि, भवेभवे भारिअतरि व्व ।।१९।।

हे जीव! जैसे-जैसे तूं अज्ञान दशा से परिग्रहादि का संचय करता है वैसे-वैसे प्रमाण से अधिक भार भरी हुइ नाव डूबती है वैसे तूं शीघ्र डूब जायेगा ।।१९।।

जा सुविणे वि हु दिट्ठी, हरेइ देहीण देहसव्वस्सं ।
सा नारी मारी इव, चयसु तुह दुबलत्तेणं ।।२०।।

मानसिक दुर्बलता से स्वप्न में स्त्री के दिखाई देने मात्र से मानव देह का सर्वस्व (वीर्य) का हरण करने वाली उस स्त्री को खूनी समझकर (रोग बढ़ानेवाली) तूं उसका त्याग कर ।।२०।।

अहिलससि चित्तसुद्धिं रज्जसि महिलासु अहह मूढत्तं।
नीलीमिलिए वत्थम्मि, धवलिमा किं चिरं ठाइ ।।२१।।

मन शुद्धि की अभिलाषा रखते हो और स्त्रियाँ पर आसक्ति करते हो। अहा! क्या तेरी मूढ़ता? गली के साथ मिले शुक्ल वस्त्र की सफेदी नील्ली कितने समय रहेगी? ।।२१।।

मोहेणं भव दूरिए, बंधिअ खित्तोसि नेहनिगडेहिं ।
बंधवमिसेण मुक्का, पाहरिआ तेसु को राओ? ।।२२।।

मोह राजा ने तुझे स्नेह रूपी जंजीरों से बांधकर संसार रूपी बंदीखाने में डाल दीया है, इन बंधुओ को (माता-पिता-भाई-स्वजन संबंधी के) बहाने से (भाग न जाय इसलिए) पहेरेगीर रखे है। अतःसंसार में जकड़कर रखने वाले इन बांधवादि पर राग कैसा?।।२२।।

धम्मो जणओ करुणा, माया भाया विवेगनामेणं ।
खंति पिआ सप्पुत्तो, गुणो कुटुंबं इमं कुणसु।।२३।।

धर्म यही पिता, करूणा ही माता, विवेक भ्राता, क्षमा प्रिय पत्नी, ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी उत्तम पुत्रों को तूं तेरा अंतरंग कुटुंब मान ।।२३।।

अइपालिआइ पगइत्थिआइ, जं भामिओसि बंधेउं ।
संते वि पुरिसकारे, न लज्जसे जीव! तेणं पि ।।२४।।

हे जीव! तेरे में पुरुषकार (पुरुषार्थ) होते हुए भी अति पाली पोषी हुई कर्म प्रकृति रूपी स्त्रियों ने तुझे बांधकर चारों गति में परिभ्रमण करवा दिया उससे अभी भी तुझे लज्जा नहीं आती?।।२४।।

सयमेव कुणसि कम्मं, तेण य वाहिज्जसि तुमं चेव।
रे जीव!अप्पवेरिअ अन्नस्य य देसि कि दोसं ।।२५।।

तूं स्वयं कर्म करता है और उससे ही निश्चय से चारों गति में परिभ्रमण करता है। फिर भी हे आत्म वैरी जीव! तूं दूसरों को (कर्म को) किसलिए दोष देता है? ।।२५।।

तं कुणसि तं च जंपसि, तं चिंतसि जेण पडसि वसणोहे ।
एयं सगिहरहस्सं, न सक्किमो कहिउमन्नस्स ।।२६।।

हे आत्मन्! तूं ऐसे कार्य करता है, ऐसे शब्द बोलता है, ऐसे विचार करता है कि जिससे दुःख के समुद्र में जा गिरता है, यह अपने घर की गुप्त बात दूसरों को कहने में मैं शक्तिमान नही हूँ अर्थात् घर की ऐसी गुप्त बाते दूसरों को कैसे कहूँ? ऐसा समता स्त्री अपने आत्मा रूपी पति से कहती है ।।२६।।

पंचिंदिय परा चोरा, मणजुवरन्नो मिलि-तु पावस्स ।
निअ-निअ अत्थे निरता, मूलट्ठिइं तुज्झ लुंपंति ।।२७।।

हे आत्मन्! स्व-स्व विषय में आसक्त ये पांच इंद्रिय रूपी महान् चोर पापी मन रूपी युवराज के साथ मिलकर तेरी ज्ञान-दर्शन रूपी मूल स्थिति अर्थात् तेरे आत्म गुण रूपी मूल धन को लूंट लेते हैं।।२७।।

हणिओ विवेगमंती, भिन्नं चउरंगधम्मचक्कं पि ।
मुट्ठं नाणाइधणं, तुमं पि छूढो कुगइकूवे ।।२८।।

उन्होंने इस विवेक रूपी मंत्री का नाश किया, चतुरंगधर्म चक्र (नरजन्म, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम में वीर्य का स्फूरण) को भी भेद डाला, ज्ञानादि धन को लूट लिया और तुझे दुर्गति कूप में डाल दिया ।।२८।।

इत्तिअकालं हुंतो, पमायनिद्दाइगलियचेअन्नो ।
जइ जग्गिओ सि संपइ, गुरुवयणा ता न वेएसि ।।२९।।

इतने समय तक तूं प्रमाद रूपी निद्रा में गलित चेतनवाला हो गया था, परंतु अब जो तूं जागृत हुआ है, तो गुरु वचन से तेरे स्वरूप को तूं क्यों नही जानता? ।।२९।।

लोगपमाणो सितुमं, नाणमओऽणंतवीरिओ सि तुमं ।
नियरज्जठिइ चिंतसु, धम्मज्झाणसणासीणो ।।३०।।

हे आत्मन्! तूं लोक प्रमाण है ज्ञानमय, अनंतवीर्य मय है तो धर्मध्यान रूपी आसन पर बैठकर तेरी आत्मराज्य की स्थिति कैसी है? इसका विचार कर ।।३०।।

को व मणो जुवराया को वा राया इ रज्जपब्भंसे ।
जइ जगिओ सि संपइ, परमेसर पइस चेअन्नं ।।३१।।

जो अब तूं जागृत ही हुआ है, तो तूं (तेरे चेतन में) स्वयं ही परमेश्वर है और ऐसा है तो फिर अपमानित मन रूपी युवराज की और चोर रूपी राजा की क्या मजाल है? जो तुझे अब तेरे आत्म राज्य से भ्रष्ट कर सके ।।३१।।

नाणमओ वि जडो वि व, पहु वि चोरु व्व जत्थ जाओ सि ।
भवदुग्गम्मि किं तत्थ, वससि साहीणसिवनयरे ।।३२।।

ज्ञानमय होने पर भी जड़ जैसा कैसे हो गया है? और मालिक होने पर भी चोर जैसा कैसे हो गया है? मोक्ष नगर सुख पूर्वक स्वाधीन होने पर भी इस भव दुर्ग में (संसार रूपी कैद खाने में) कैसे रह रहा है? ।।३२।।

जत्थ कसायाचोरा, महावया सावया सया घोरा ।
रोगा दुट्ठभुअंगा आसासरिआ घणतरंगा ।।३३।।

(भव दुर्गम शैल-पर्वत कैसा है और उसे क्रीड़ा मात्र से कैसे भेदा जाय वह कहा जाता है)

जहां चोरों के जैसे कषाय है, महाभयंकर हिंसक प्राणी जैसी विपत्तियाँ है, जहाँ दुष्ट सर्प जैसे रोग आंतक रहे हुए है और अनेक तरंगोवाली नदी के जैसी आशा रही हुई है ।।३३।।

चिंताडवी सकट्ठा बहुलतमा सुंदरी दरी दिट्ठा ।
खाणी गइ अणेगा, सिंहराइं अट्ठमयभेआ ।।३४।।

लकडे सहित अटवी जैसी चिंता और अत्यंत अंधकार युक्त गुफा के जैसी स्त्री दिखाई देती है, अनेक खानों के जैसी चारों गतियाँ है, जिसके आठ भेद है वैसे शिखर है ।।३४।।

रयणिअरो मिच्छत्तं, मणदुक्कडओ सिलातलममत्तं ।
तं भिंदसु भवसेलं, झाणासणिणा जिअ सहेलं ।।३५।।

जहां राक्षस जैसा मिथ्यात्व रहता है, मन के पाप से उत्पन्न बनी ममता रूपी शिला है, उस संसार रूपी कठिन-दुर्गम पर्वत को ध्यान रूपी वज्र से लीला मात्र में हे जीव! तूं नष्ट कर दे ।।३५।।

जत्थत्थिआयनाणं, नाणं विरयाण सिद्धसुहयंतं ।
सेसं बहुं वि अहियं, जाणसु आजीविआमित्तं ।।३६।।

जहां आत्मज्ञान है, वहां निश्चल ज्ञान है, और सिद्धि सुख को देने वाला भी वही ज्ञान है दूसरा अधिक ज्ञान या तो अहित करेगा या आजीविका मात्र होगा ऐसा समझो ।।३६।।

सुबहु अहिअं जह जह, तह तह गव्वणे पूरिअं चित्तं ।
हिअअप्पबोहरहिअस्स ओसहाउ उट्ठिओ वाही ।।३७।।

आत्मबोध न होने से जैसे-जैसे अधिक ज्ञानार्जन किया, वैसे-वैसे गर्व से पूरित चित्त बना और हृदय में उस अध्ययन रूपी औषध में से रोग उत्पन्न हुआ ।।३७।।

अप्पाणमबोहंता, परं विबोहंति केइ ते वि जडा।
भण परियणम्मि छुहिए, सत्तागारेण किं कज्जं ।।३८।।

कितने ही आत्मबोध किये बिना दूसरों को बोध देने जाते है वे वास्तव में जड़ (मूर्ख) है, एक ओर स्व परिवार भूखा है फिर भी दानशाला चालू करने का क्या प्रयोजन? वह तुम ही कहो।।३८।।

बोहंति परं किं वा मुणंति कालं नरा पठंति सुअं ।
ठाणं मुअंति सया वि हु, विणाऽऽयबोहं पुण न सिद्धी।।३९।।

दूसरों को बोध देता है, ज्योतिबादि से कालादि का स्वरूप जानता है, सूत्र पढ़ता है, और नित्य स्वस्थान (देश-परिवार) छोड़ता है फिर भी आत्मज्ञान न होने से उनकी सिद्धी तो नहीं ज ।।३९।।

अवरो न निंदिअव्वो, पसंसिअव्वो कया वि न हु अप्पा ।

समभावो कायव्वो, बोहस्स रहस्स मिणमेव ।।४०।।

परनिंदा न करनी, स्व प्रशंसा कभी नही करनी, समभाव सदा रखना यही आत्मबोध का रहस्य है ।।४०।।

परसक्खित्तं भंजसु रंजसुअप्पाणमप्पणा चेव ।
वज्जसु विविह कहाओ, जइ इच्छसि अप्पविन्नाणं ।।४१।।

जो तुझे आत्म विज्ञान की (आत्मानुभव की) इच्छा हो तो दूसरों की साक्षी पने को छोड़ दो, आत्मा को आत्मा से ही खुश करो और विविध कथा विकथा को छोड़ दो ।।४१।।

तं भणसु गणसु वायसु झायसु उवइससु आयरेसु जिआ ।
खणमित्तमपि विअक्खण आयारामे रमसि जेणं ।।४२।।

हे जीव वही अध्ययन कर, गुण, पढ, उसी का ध्यानकर वही उपदेश और वही आचरण कर जिससे हे विचक्षण! क्षण मात्र भी आत्म उद्यान में रमणता हो ।।४२।।

इय जाणिऊण ततं गुरूवइट्ठं परं कुण पयत्तं ।
लहिऊंअ केवलसिरिं जेणं जयसेहरो होसि ।।४३।।

इस गुरु उपदेशित तत्त्व को जानकर प्रयत्न कर जिससे केवललक्ष्मी प्राप्त कर जयशेखर (सूरि) आठ कर्म का क्षय करनेवाला बनेगा ।।४३।।

इंद्रियादिविकारनिरोधकुलकम्

रज्जाइभोगतिसिया अट्टवसट्टा पडंति तिरिअेसु।
जाइमएण मत्ता किमिजाइं चेव पावंति ।।१।।

राज्यादि भोग की तृष्णावान् जीव आर्तध्यान के वशीभूत होकर तिर्यंच गति में जाता है। जाति मद से मदोन्मत्त आत्मा कृमि आदि कीडों की जाति में जन्म लेता है ।।१।।

कुलमत्ति सियालित्ते, उट्ठाइजोणि जत्ति स्वमए।
बलमत्ते वि पयंगा, बुद्धिमए कुक्कडा हुंति ।।२।।

कुलमद कर्ता शियाल, रूपमद कर्ता ऊँटादि, बलमद कर्ता पतंगिया और बुद्धिमद से कुकडे पन उत्पन्न होता है ।।२।।

रिद्धिमए साणाइ सोहग्गमएण सप्प-कागाइ।
नाणमएण बइल्ला, हवंति मय अट्ठ अइदुट्ठा ।।३।।

रिद्धिमद से कुत्ते आदि, सौभाग्य मद से सर्प-कौआ आदि और ज्ञान मद से बैल आदि रूप में व्यक्ति जन्मता है। अतः ये आठो ही मद अत्यंत दुष्ट है

कोहणसीला सीही, मायावि बगत्तणम्मि वच्चंति ।
लोहिल्ल मूसगत्ते, एव कसाएहिं भमडंति ।।४।।

क्रोधी व्यक्ति अग्नि काय में उत्पन्न होता है। मायावी बगुला बनता है और लोभी उंदर पना पाता है इस प्रकार कषाय के कारण दुर्गति में भ्रमण होता है ।।४।।

माणसदंडेणं पुण, तंदुलमच्छा हवंति मणदुट्ठा।
सुय-त्तित्तर-लावाई, होउ वायाइ बज्झंति।।५।।

दुष्ट मन वाले मनदंड से तंदुलिया मच्छ होता है। वचनदंड से

जीव पोपट, तितर, लावरी आदि पक्षी के रूप में जन्म लेकर बंधन में गिरते है ।।५।।

काएण महामच्छा, मंजरा (उ) हवंति तहकूरा ।
तं तं कुणंति कम्मं, जेण पुणो जंति नरएसु ।।६।।

कायदंड से क्रूर ऐसे मच्छ और बिलाड आदि रूप में जन्म और उन-उन भवों में पुनः तीनों दंड से वे वे कर्म कर वहां से आयु पूर्ण कर नरक में जाता है ।।६।।

फासिंदियदोसेणं, वणसुयरत्तम्मि जंति जीवा वि।
जिहालोलूयवग्घा, घाणवसा सप्पजाइसुं ।।७।।

स्पर्शेन्द्रिय के दोष से जीव अटवी में भूंड रूप में उत्पन्न होता है, जीह्वा इंद्रिय से लोलुप जीव व्याघ्र रूप में उत्पन्न होता है, और घ्राणेन्द्रिय के वश से सर्पादि की जाति में उत्पन्न होता है ।।७।।

नयणिंदिए पयंगा, हुंति मया पुण सवणदोसेणं ।
ए ए पंच वि निहणं, वयंति पंचिंदिएहिं पुणो ।।८।।

चक्षु इंद्रिय के दोष से पतंगिए, श्रोतेन्द्रिय के दोष से मृग इस प्रकार पांचों इंद्रियों के दोष से जीव पुनः दुसरे भवों में इसी प्रकार नष्ट होता है ।।८।।

जत्थ य विसयविराओ, कसायचाओ गुणेसु अणुराओ।
किरियासु अप्पमाओ, सो धम्मो सिवसुहो लोए (वाओ) ।।९।।

वे जीव! जिसमें विषयों से विराग, कषाय त्याग, गुणों में अनुराग, क्रिया में अप्रमादी पना है वही धर्म जगत में मोक्ष सुख देने वाला है ।।९।।

श्री जीवानुशास्तिकुलकम्

रे जीव! किं न बुज्झसि, चउगइ संसारसायरे घोरे।
भमिओ अणंतकालं, अरहट्टघडि व्व जलमज्झे ।।१।।

हे जीव! चार गति रूप संसार समुद्र में अरहट के कूप में जल के घड़े के समान अनंतकाल घूमा फिरभी बोधित क्यों नही होता?।।१।।

रे जीव! चिंतसि तुमं, निमित्तमित्तं परो हवइ तुज्झ ।
असुहपरिणामजणियं, फलमेयं पुव्वकम्माणं ।।२।।

हे जीव! दूसरे तो (दुःख में) निमित्त मात्र ही है और यह सब अशुभ परिणाम से उत्पन्न पूर्व कर्म का फल है ऐसा तूं चिंतन करता है? ।।२।।

रे जीव! कम्मभरियं, उवएसं कुणसि मूढ! विवरीयं ।
दुग्गइ गमणमणाणं, एसच्चिय हवइ परिणामो ।।३।।

हे जीव! कर्म से भारी बना तूं विपरीत उपदेश करता है (क्योंकि) दुर्गति में जाने की इच्छावाले के परिणाम ही ऐसे होते हैं।।३।।

रे जीव! तुमं सीसे, सवणा दाऊण सुणसु मह वयणं ।
जं सुक्खं न वि पाविसि, ता धम्मविवज्जिओ नूणं ।।४।।

हे शिष्य! तूं कान देकर मेरे वचन सून, तूं सुख प्राप्त नहीं करता अतः वास्तव में तूं धर्म रहित ही है ।।४।।

रे जीव! मा विसायं जाहि तुमं पिच्छिऊण पररिद्धी।
धम्मरहियाण कुत्तो, संपज्जइ विविह संपत्ति? ।।५।।

हे जीव! अन्य की ऋद्धि देख तूं विषाद न कर, धर्म रहित जीव को विविध प्रकार की ऋद्धि कैसे प्राप्त हो? ।।५।।

रे जीव! किं न पिच्छसि? झिज्झंतं जुव्वणं धणं जीअं ।
तह वि हु सिग्धं न कुणसि, अप्पहियं पवर जिणधम्मं ।।६।।

हे जीव! यौवन, धन और जीवित का नाश होते तूं नही देखता?

तो फिर आत्महितकर श्रेष्ठ जिनधर्म का पालन वास्तव में क्यों नही करता? ।।६।।

हे जीव! माणवज्जिअ, साहसपरिहीण दीण गयलज्ज ।
अच्छसि किं विसत्थो, न हु धम्मे आयरं कुणसि ।।७।।

हे स्वमान रहित, साहस रहित गरीब रंक निर्लज्ज जीव! (संसार पर) विश्वास रखकर क्यों बैठा है? धर्म में बिलकुल आदर नही करता है ।।७।।

रे जीव! मणुयजम्मं, अकयत्थं जुव्वणं च वोलीणं ।
न य चीण्णं उग्गतवं, न य लच्छी माणिआ पवरा ।।८।।

हे जीव! मनुष्य जन्म और यौवन निष्फल बना, उग्र तपाचरण भी नहीं किया और उत्तम प्रकार की लक्ष्मी भी नही मिली ।।८।।

रे जीव! किं न कालो, तुज्झ गओ परमुहं नीयंतस्स ।
जं इच्छियं न पत्तं, तं असिधारावयं चरसु ।।९।।

हे जीव! दूसरे के मुख को देखते हुए तेरा समय व्यर्थ नही गया? जो तुझे इच्छित था वह न मिला, तो अब असिधारा सम व्रत का पालन कर ।।९।।

इय मा मुणसु मणेणं, तुज्ज सिरीजा परस्स आइत्ता ।
ता आयरेण गिण्हसु, संगोवय विविह पयत्तेण ।।१०।।

तेरी लक्ष्मी दूसरे के कब्जे में हैं (आत्म लक्ष्मी) ऐसा तूं मन से न मान। आदरपूर्वक उसको प्रकट कर और विविध प्रयत्न द्वारा उसकी रक्षा कर ।।१०।।

जीविअं मरणेण समं, उप्पज्जइ जुव्वणं सह जराए।
रिद्धी विणाससहिआ, हरिसविसाओ न कायव्वो ।।११।।

हे जीव! जीवित मरण के साथ, यौवन वृद्धावस्था के साथ, ऋद्धियाँ विनाश के साथ उत्पन्न होती है। अतः जीवित यौवन ऋद्धि आदि का हर्ष न कर और मरण, जरा और विनाश को देखकर विषाद न कर ।।११।।

गुणानुरागकुलकम्

सयलकल्लाणनिलयं, नमिऊणं तित्थनाहपयकमलं ।
परगुणगहणसरूवं, भणामि सोहग्गसिरिजणयं ।।१।।

सभी कल्याण के निवासस्थान रूप परमकृपालु तीर्थंकर परमात्मा के चरणकमल में नमस्कार करके सौभाग्य श्री (लक्ष्मी) कारक ऐसा दूसरों के गुण ग्रहण करने का स्वरूप (संक्षेप में) कहूंगा ।।१।।

वर्तमान में परगुण ग्रहण की अति आवश्यकता है। आत्म गुण की वृद्धि के लिए यह गुण महानिधि है।

उत्तमगुणाणुराओ, निवसइ हियए तु जस्स पुरिसस्स ।
आतित्थयरपयाओ न दुल्लहा तस्स रिद्धिओ ।।२।।

जिस पुरुष के हृदय में उत्तम गुणवान पुरुषों की ओर उनके गुण का अनुराग रहता है उसे तीर्थंकर पद तक की रिद्धियाँ सुलभ है, दुर्लभ नहीं ।।२।।

दूसरों के गुणों को महत्व देने वाला उन गुणों को अपने आत्मा में प्रकट कर देता है। एक गुण अनेक गुणों को जन्म देता है। गुणवान के पास भौतिक रिद्धियाँ दौड़ी आती है।

ते धन्ना ते पुन्ना, तेसु पणामो हविज्ज मह निच्चं ।
जेसिं गुणाणुराओ, अकित्तिमो होइ अणवरयं ।।३।।

जिनके हृदय में निरंतर गुणानुराग रहा हुआ है, वे प्रशंसा करने योग्य हैं, वे पुण्यशाली हैं, उनके प्रति मेरा नित्य नमस्कार हो ।।३।।

गुणानुरागी आत्मा की पुण्यराशि वृद्धि को पाती है। जिससे उसकी प्रशंसा गुणीजन करते हैं और सारा सभ्य समाज उसे प्रणाम करता है, वैसा गुणानुराग पाने के लिए—

किं बहुणाभणिएणं, किं वा तविएण किं व दाणेणं ।
इक्कं गुणाणुरायं, सिक्खह सुक्खाण कुलभवणं ।।४।।

अधिक अध्ययन से क्या? विशेष तप से क्या? अधिक दान देने से भी क्या? एक गुणानुराग का शिक्षण लो जो सभी सुखों का उत्पत्ति स्थान है ।।४।।

एक गुण की विशेषता दर्शाते समय दुसरे गुणों की गौणता बतायी जाती है। अध्ययन, तप और दान से भी गुणानुराग गुण को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है।

अतः इन सबसे गुणानुराग गुण को प्रकट करो।

जइवि चरसि तवविउलं, पठसि सुयं करिसि विविहकट्ठाइं।
न धरसि गुणाणुरायं, परेसु ता निष्फलं सयलं ।।५।।

जो कि तूं अधिक कठिन तपाचरण करता है, शास्त्राध्ययन करता है और आसनादि के अनेक कष्ट सहन करता है इन क्रियाओं के करते हुए भी परगुण दृष्टि नही है दूसरों के गुण नही देखता है तो वे तेरी सब क्रियाएँ निष्फल है ।।५।।

नमक बिना का भोजन फीका है।

शक्कर बिना का हलुवा (सीरा) व्यर्थ है।

आँख बिना का रूप कुरूप है।

वैसे ही परगुण दृष्टि के बिना का तपाचरण आदि धर्म क्रियाएँ निष्फल है।

सोऊण गुणक्करिसं, अन्नस्स करेसि मच्छरं जइ वि ।
ता नूणं संसारे, पराहवं सहसि सव्वत्थ ।।६।।

दूसरों के गुणों की प्रशंसा सुनकर जो तूं मात्सर्य धारण करता है, तो तूं निश्चय से इस संसार में सभी स्थान पर पराभव प्राप्त करेगा।।६।।

जवासा का पौधा वनराजी को वर्षाऋतु में विकसित होती देखकर स्वयं इर्ष्या के कारण शुष्क हो जाता है। वैसा ही परगुण की इर्ष्या करने वाला बनता है।

गुणवंताणनराणं, ईसाभरतिमिरपूरिओ भणसि ।
जइ कह वि दोस लेसं, ता भमसि भवे अपारम्मि ।।७।।

जो तुम ईर्षा की अधिकता के अंधकार से अंध बनकर गुणवंत पुरुषों का किसी भी प्रकार अंशमात्र दोष निकालेगा तो इस अपार संसार रूपी समुद्र में परिभ्रमण करेगा ।।७।।

जं अब्भसेइ जीवो, गुणं च दोसं च इत्थ जम्मम्मि ।
तं परलोए पावइ, अब्भासेणं पुणो तेणं ।।८।।

जीव इस जन्म में गुण या दोष इन दोनों में से जिसका अनुकरण करे उस अनुकरण के कारण पुनः परलोक में वैसा ही बनेगा ।।८।।

खटास खाने वाले की डकार खट्टी ही होगी ।

जो जंपइ परदोसे, गुणसयभरिओ वि मच्छरभरेणं ।
सो विउसाणमसारो, पलालपुंज्जु व्व पडिभाइ ।।९।।

जो पुरुष स्वयं शताधिक गुण से युक्त होने पर भी मात्सर्य (इर्ष्या) के आवेश से पर दोष प्रकट करता है तो विद्वानों में उसकी गिनती घास के पूले के समान हो जाती है। उसके भाव कोई नहीं पूछता ।।९।।

अनेक द्रव्यों से संयुक्त बना हुआ दूधपाक स्वादिष्ट होते हुए भी उसमें एक तोला जहर गिर जाय तो उसे कोई नहीं पीता ।।

जो परदोसे गिण्हइ, संताऽसंते वि दुट्ठभावेणं ।
सो अप्पाणं बंधइ, पावेण निरत्थएणावि ।।१०।।

जो पुरुष दुष्ट भाव से दुसरों में दोष हो या न हो, उनके दोष ग्रहण करता है अर्थात् दुसरों पर सत्यासत्य दोषारोपण करता है। वह आत्मा अपनी आत्मा को निरर्थक पाप से बांधता है।

तं नियमा मुत्तव्वं, जत्तो उपज्जए कसायग्गी ।
तं वत्थुं धारिज्जा, जेणोवसमो कसायाणं ।।११।।

जिस कार्य से क्रोधादि कषाय रूपी अग्नि प्रदीप्त होती हो उस कार्य को नियम से निश्चय से छोड़ देना चाहिए और जिससे क्रोधादि कषाय उपशांत होते हो वह कार्य अवश्य करना चाहिए।।११।।

जइ इच्छह गुरुयत्तं, तिहुयणमज्झम्मि अप्पणो नियमा ।

ता सव्वपयत्तेणं, परदोसविवज्जणं कुणह ।।१२।।

जो तुम तीन भुवन में अपना बडप्पन प्राप्त करना चाहते हो तो सर्व प्रयत्न से पर दोषों का प्रकटीकरण करना बंध कर दो ।।१२।।

चउहा पसंसणिज्जा, पुरिसा सव्वुत्तमुत्तमालोए ।
उत्तमउत्तम-उत्तम-उत्तम-मज्झिम भावा य सव्वेसिं ।।१३।।

इस जगत में चार प्रकार के पुरुष सभी के लिए प्रशंसा करने योग्य है। (१) सर्वोत्तमोत्तम, (२) उत्तमोत्तम, (३) उत्तम, (४) मध्यम।

जे अहमअहम-अहमा, गुरुकम्मा धम्मवज्जिया पुरिसा ।
ते विय न निंदणिज्जा, किंतु तेसु दया कायव्वा ।।१४।।

५ अधम ६ अधमाधम जो भारे कर्मी और धर्मवर्जित होते है। उनकी भी निंदा नहीं करनी चाहिए। उन पर तो करुणाभाव रखने चाहिए।।१४।।

पच्चंगुब्भडजुव्वण-वंतीणं सुरहिसारदेहाणं ।
जुवईणं मज्झगओ, सव्वुत्तमरूववंतीणं ।।१५।।

आजम्मबंभयारी, मणवयकाएहिं जो धरइ सीलं ।
सव्वुत्तमुत्तमो पुण, सो पुरिसो सव्वनमणिज्जो ।।१६।।

प्रत्येक अंग में प्रकटीत उत्कट यौवन युक्त, सुगंध से महकते देह युक्त और सब से उत्तम रूपवान नारियों के बीच में रहा हुआ भी जो पुरुष तीनों योग से ब्रह्मचारी शीलवान हो उस पुरुष को सर्वोत्तमोत्तम जानना और वह सभी के लिए नमनीय है ।।१५-१६।।

एवं विह जुवइगओ, जो रागी हुज्ज कहवि इगसमयं ।
बीय समयम्मि निंदइ, तं पावं सव्वभावेण ।।१७।।

जम्मंमि तम्मि न पुणो, हविज्ज रागो मणंमि जस्स कया ।
सो होइ उत्तमुत्तम रूवो पुरिसो महासत्तो ।।१८।।

उपरोक्त स्त्रियों के पास में रहा हुआ पुरुष कदाच क्षण मात्र के लिए मन में विकारवान हो जाय और शीघ्र जागृत होकर पश्चात्ताप कर पुनः ऐसा पापी विचार जीवन भर मन में आने न दे उसको उत्तमोत्तम पुरुष समझना। वह महासत्त्वशाली होता है ।।१७-१८।।

पिच्छिय जुवईरूवं, मणसा चिंतेइ अहव खणमेगं ।
जो नायरइ अकज्जं, पत्थिज्जंतो वि इत्थीहिं ।।१९।।

साहूवा सड्ढो वा, सदारसंतोससायरो हुज्जा ।
सो उत्तम मणुस्सो, नायव्वो थोव संसारो ।।२०।।

जो पुरुष स्त्री के रूप से क्षणभर के लिए मन से आकर्षित हो जाय, वह स्त्री उसे अपनी ओर खींचना चाहे पर साधु या श्रावक अकार्य न करे और साधु अपने ब्रह्मव्रत में, श्रावक स्वदार संतोष व्रत में स्थित रहे तो वह पुरुष उत्तम समझना, उस पुरुष का संसार अल्प समझना ।।१९-२०।।

पुरिसत्थेसु पवट्टइ, जो पुरिसो धम्मअत्थपमुहेसु ।
अनुन्नमवाबाहं, मज्झिम रूवो हवइ एसो ।।२१।।

जो पुरुष धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थो में किसी भी प्रकार की रुकावट न लाकर उसमें प्रवृत्त रहे वह मध्यम पुरुष जानना।।२१।।

एएसिं पुरिसाणं, जइ गुणगहणं करेसि बहुमाणं ।
तो आसन्नसिवसुहो, होसि तुमं नत्थि संदेहो ।।२२।।

जो उपरोक्त चारों प्रकार के पुरुषों के गुणों की बहुमान पूर्वक प्रशंसा करेगा, तो तुम अति शीघ्र मुक्ति सुख प्राप्त करोगे इसमें किसी प्रकार का संदेह मत रखना ।।२२।।

पासत्थाइसु अहुणा संजमसिढिलेसु मुक्कजोगेसु ।
नो गरिहा कायव्वा, नेव पसंसा सहामज्झे ।।२३।।

वर्तमान में संयम पालन में शिथिल बने हुए, योग क्रियाहीन पासत्था, केवलयतिवेशधारी लोगों की, जन सभा में न तो निंदा करनी न उनका परिचय रखना, न उनकी प्रशंसा करनी ।।२३।।

काऊण तेसु करुणं, जइ मनइ तो पयासए मग्गं ।
अह रुसइ तो नियमा, न तेसि दोसं पयासेइ ।।२४।।

ऐसे पासत्थादि पर करुणा भाव लाकर जो वे माने ऐसा लगे तो सत्य मार्ग बताना, परंतु जो सत्योपदेश से वे क्रोधित बन जाय तो कभी

भी उन्हें न तो उपदेश देना, न उनके दोषों को प्रकट करना।।२४।।

संपइ दूसमसमए, दीसइ थोवो वि जस्स धम्मगुणो ।
बहुमाणो कायव्वो, तस्स सया धम्मबुद्धीए ।।२५।।

वर्त्तमान के दूषम-विषम काल में जिन आत्माओं में थोडा भी धार्मिक गुण देखने में आये तो उनकी ओर नित्य धर्म बुद्धि से बहुमान पूर्वक वर्तना ।।२५।।

जउ परगच्छि सगच्छे, जे संविग्गा बहुस्सुया मुणिणो ।
तेसिं गुणाणुरायं, मा मुंचसु मच्छरप्पहओ ।।२६।।

जो परगच्छ या स्वगच्छ में संविग्न, बहुश्रुत विद्वान मुनि भगवंत हो तो उनकी ओर मात्सर्य भाव लाकर गुणानुराग को मत छोड़ना। अर्थात् उनके प्रति गुणानुराग रखना और इर्ष्या भाव न करना ।।२६।।

गुणरयणमंडियाणं, बहुमाणं जो करेइ सुद्धमणो ।
सुलहा अन्नभवंमि य, तस्स गुणा हुंति नियमेणं ।।२७।।

गुण रूपी रत्नों से मंडित पुरुषों का जो शुद्ध मन से बहुमान करता है उसे आनेवाले भवों में वे-वे गुण निश्चय से प्राप्त होने सुलभ हो जाते हैं ।।२७।।

एयं गुणाणुरायं, सम्मं जो धरइ धरणिमज्झम्मि।
सिरिसोमसुन्दरपयं, सो पावइ सव्वनमणिज्जं ।।२८।।

इस गुणानुराग को जो पुरुष सम्यग् रीति से इस पृथ्वी पर रहकर धारण करता है वह श्री सोमसुंदर अर्थात् शोभित चंद्र जैसा शांतिमय और सब को नमनीय (तीर्थंकर रूपी) पद को प्राप्त करता है ।।२८।।

इस अंतिम श्लोक में अपने गुरु का नाम और गुणानुराग का अंतिम फल भी दर्शाया है।

वर्तमान काल में गुणानुराग की अत्यंत कमी है। इसका वांचन मनन कर अपने गुणानुराग का दीपक प्रज्वलित करे। यही "मंगल कामना"

श्री गौतम कुलकम् सार्थ

लद्धा नरा अत्थपरा हवंति, मूढा नरा काम परा हवंति ।
बुद्धा नरा खंतिपरा हवंति, मिस्सा नरा तिन्नि वि आयरंति।।१।।

संसार में अत्यासक्त आत्मा का जीवन अर्थ (धन) प्रधान होता है। वह लोभी अपने जीवन को धनार्जन के लिए मानता है। और जो मूर्ख मानव होते हैं उनका जीवन काम प्रधान होता है। वासना की आग को शांत करने में जीवन पूर्ण करते हैं। उनकी वासना की आग तो नहीं बुझती परंतु उनका जीवन दीप अतिशीघ्र बुझ जाता है।

पंडित-ज्ञानी-महापुरुषो के जीवन में क्षमा प्रधान होती है। वे क्षमा के लिए जीते हैं। उनका स्वभाव ही क्षमा प्रधान होता है। यहाँ क्षमा का अर्थ क्षमा धर्म के रूप में है।

और जो संसार में अत्यासक्त नहीं होते, न मूर्ख होते है और न पंडित होते हैं वे मिश्र मनुष्य अर्थ, काम और धर्म रूप तीनों वर्ग की संसाधना करते हुए जीवन यापन करते हैं।

वे तीनों को अपने-अपने स्थान पर आचरण में लेते हैं।

ते पंडिया जे विरया विरोहे, ते साहूणो जे समयं चरंति ।
ते सत्तिणो जे न चयंति धम्मं, ते बंधवा जे वसणे हवंति ।।२।।

जगत में पंडित वही जो विरोध से विरत होकर धर्म पर आरोहण करते हैं। अर्थात् विरतिधर्म का यथाशक्ति स्वीकार करतें हैं।

वे ही साधु जो देश, काल, क्षेत्रादि का विचारकर स्वयं की शक्ति को तोलकर सिद्धांतानुसार आचरण करते हैं।

वे शक्तिशाली वीर पुरुष है जो स्वीकृत धर्म को मरणांत कष्ट आने पर भी न छोड़े।

भाई तो वे ही जो संकट विपत्ति के समय पास में आकर विपत्ति को दूर करने में यथाशक्ति प्रत्यन करते हैं।

कोहाभिभूया न सुहं लहंति, माणंसिणो सोयपरा हवंति ।
मायाविणो हुंति परस्स पेसा, लुद्धा महिच्छा नरयं उविंति ।।३।।

क्रोधाभिभूत व्यक्ति कभी सुख को प्राप्त नहीं करता, मान से ग्रसित व्यक्ति सतत शोकमग्न रहता है, मायावी आत्मा दूसरों की सेवा करता रहता है और लुब्धनर लोभी आत्मा अति महेच्छाओं के कारण नरक में उत्पन्न होता है। अर्थात् कषाय युक्त आत्मा सतत दुःखो को भोगता है।

कोहो विसं किं अमयं अहिंसा, माणो अरि किं हियप्पमाओ ।
मायाभयं किं सरणं तु सच्चं, लोहो दुहो किं सुह माह तुट्ठी।।४।।

क्रोध वही विष है अमृत वही अहिंसा।

मान वही शत्रु, अप्रमाद वही हित, माया वही भय, शरण वही सत्य, लोभ वही दुष्ट साथी जिसका संग एक समय के लिए भी न छोड़े उसे संतोष रूप सुख का आस्वाद लेश मात्र नहीं आता।

बुद्धी अचंडं भयए विणियं, कुद्धं कुसीलं भयए अ कित्ती ।
संभिन्नचित्तं भयए अलच्छि, सच्चेठियं संभयए सिरी य ।।५।।

विनयवंत सौम्य प्राणी की सेवा बुद्धि को उत्पन्न करती है अर्थात् बुद्धि उसे ही प्राप्त होती है, क्रोधी एवं कुशील को अपकीर्ति प्राप्त होती है, भग्नचित्तयुक्त लक्ष्मी से रहित होता है, और सत्य में स्थित व्यक्ति के पास लक्ष्मी आती है।

चयंति मित्ताणी नरं कयग्घं, चयंति पावाइं मुणिं जयंतं ।
चयंति सुक्काणि सराणि हंसा, चएइ बुद्धी कुवियं मणुस्सं ।।६।।

कृतघ्न मानव के पास से मित्रजन दूर हो जाते हैं। मुनिभाव में रहनेवाले आत्मा से पाप दूर हो जाते हैं, सरोवर के सुख जाने पर हंस सरोवर से चले जाते हैं और कुपित मानव-क्रोधीत मनुष्य से बुद्धि दूर जली जाती है।

अरोई अत्थं कहिए विलावो, असंपहारे कहिए विलावो ।
विक्खित्तचित्ते कहिए विलावो, बहुकुसीसे कहिए विलावो ।।७।।

श्रवण करने वाले को रूची न हो उसे श्रवण करवाना विलाप

तूल्य, अनिश्चित अर्थ की प्ररूपणा विलाप तूल्य है। विक्षिप्त चित्त अर्थात् चिंता में निमग्न चित्त है जिस चेतन के पास वह सतत विलाप तूल्य दुःख सहन करता है। और जिस गुरु के पास कुशिष्यों की अधिकता हो गयी है वह गुरु उनको अधिक उपदेश देता है तब वह विलाप तूल्य दुःख सहते हुए जीवन यापन करता है।

दुट्ठाहिवा दंडपरा हवंति, विज्जाहरा मंतपरा हवंति ।
मुक्खानरा कोवपरा हवंति, सुसाहुणो तत्तपरा हवंति ।।८।।

दुष्ट राजा दंड प्रधान होते हैं। दुष्ट व्यक्ति दूसरों को दंडित करने में विशेष रूप से भाग लेते हैं। विद्याधर पुरुष मंत्र प्रधान जीवन जीने वाले होते हैं। मूर्ख आत्मा क्रोध को मुख्य स्थान देकर जीवन जीनेवाले होते हैं। सुसाधु-सद्गुरु भगवंत तत्त्व प्रधान जीवन जीनेवाले होते हैं।

सोहा भवे उग्गतवस्स खंती, समाही जोगो पसमस्स सोहा ।
नाणं सुझाणं चरणस्स सोहा, सीसस्स सोहा विणए पवित्ती ।।९।।

उग्रतपश्चर्या करने वाले भव्यात्मा की शोभा क्षमा धर्म के परिपालन में है। प्रशमरस में निमग्न भव्यात्मा की शोभा समाधि योग में है और शिष्य की शोभा विनय धर्म की प्रवृत्ति में हैं।

अभूसणो सोहइ बंभयारी, अकिंचणो सोहइ दिक्खधारी ।
बुद्धि जुओ सोहइ रायमंती, लज्जा जुओ सोहइ एगपत्ति ।।१०।।

ब्रह्मचारी भूषण रहित शोभनिक दिखता है। अर्थात् ब्रह्मचारी आत्मा को भौतिक भूषणों की आवश्यकता नहीं रहती। उसके लिए भूषण-दूषण है। दूसरी अपेक्षा से ब्रह्मचारी भूषण रहित होते हुए भी आभूषण धारकों से भी विशेष शोभनीय होता है। दीक्षाधारक आत्मा साधु की शोभा अकिंचनत्व गुण में है। राजा का मंत्री बुद्धियुक्त होता है तभी शोभा को पाता है।

लज्जागुण युक्त आत्मा एक पत्नी व्रत से शोभायमान होता है।

अप्पा अरी होइ अणवट्ठीयस्स, अप्पा जसो सीलमओ नरस्स ।
अप्पा दुरप्पा अणवट्ठीयस्स, अप्पा जिअप्पा सरणं गइ य ।।११।।

अनवस्थित आत्मा स्वयं का शत्रु होता है। सीलवंत आत्मा के

लिए आत्मा ही जस-यशकीर्ति का कारण है। अनवस्थित आत्मा ही दुष्टात्मा है और शरण ग्रहण करने योग्य वही आत्मा है, जो जितेन्द्रिय है।

न धम्मकज्जा परमत्थि कज्जं, न पाणिहिंसा परमं अकज्जं ।
न पेमरागा परमत्थि बंधो, न बोहिलाभा परमत्थि लाभो ।।१२।।

धर्मकार्य के समान कोई परमार्थ से उत्तमोत्तम कार्य नहीं है। और प्राणी हिंसा के जैसा कोई अधमाधम अकृत्य नहीं है। प्रेमराग के जैसा न कोई बंधन है और बोधिलाभ जैसा उत्तमोत्तम कोई लाभ नहीं है।

न सेवियव्वा पमया परक्का, न सेवियव्वा पुरिसा अविज्जा ।
न सेवियव्वा अहिमाणिहिणा, न सेवियव्वा पिसुणा मणुस्सा ।।१३।।

परस्त्री का सेवन न करना, न अज्ञ पुरुष की सेवा करनी, न अभिमानी नीच पुरुष की सेवा करनी, न परनिंदक पैशून्यता धारक मनुष्य की सेवा करनी। ये चार अकार्य सज्जन पुरुष को कभी नहीं करने चाहिए।

जे धम्मिया ते खलु सेवियव्वा, जे पंडिया ते खलु पुच्छियव्वा ।
जे साहुणो ते अभिवंदिअव्वा,जे निमम्मा ते पडिलाभियव्वा।।१४।।

जो धर्मी पुरुष है उनकी सेवा अवश्य करनी चाहिए, जो पंडित है विद्वान है उनसे जानकारी प्राप्त करने हेतु अवश्य प्रश्न पूछने चाहिए। जो साधु भगवंत है उनको अवश्य वंदन करना चाहिए और जो निर्मोही है ममत्व भाव से रहित है उनकी भक्ति अवश्य करनी ही चाहिए।

पुत्ता य सीसा य समं विभत्ता, रिसी य देवाय समं विभत्ता ।
मुक्खा तिरिक्खा य समं विभत्ता, मुआ हरिद्दाय समं विभत्ता ।।१५।।

पुत्र एवं शिष्य एक समान दर्शाये है वैसे ऋषि और देव समान रूप से है, मूर्ख और तिर्यंच एक समान है और मृत और दरिद्र एक समान है। सज्जन पुरुष को ऐसा मानना चाहिए।

सव्वा कला धम्मकला जिणाइ, सव्वा कहा धम्म कहा जिणाइ।
सव्व बलं धम्मबलं जिणाइ, सव्वं सुहं धम्म सुहं जिणाइ ।।१६।।

सभी कलाओं में धर्मकला को श्रेष्ठ जानना, सभी कथाओं में

धर्मकथा श्रेष्ठ जानना, सभी प्रकार के बल में धर्मबल को श्रेष्ठ जानना और सभी प्रकार के सुख में धर्मसुख को ही सर्वश्रेष्ठ जानना। या सभी प्रकार के शुभ कार्यों में धर्म रूप शुभ कार्य को सर्व श्रेष्ठ जानना। ये कलाएँ दूसरी कलाओं को जीतनेवाली है।

जूए पयत्तस्स धणस्स नासो, मंसे पसत्तस्स दयाइ नासो ।
मज्जं पसत्तस्स जसस्स नासो, वेसा पसत्तस्स कुलस्स नासो ।।१७।।

जुगार जूआँ में प्रसक्त मानव के धन का नाश होता है, मांस खाने में प्रसक्त मानव के दया परिणाम नष्ट हो जाते हैं, मद्यपीने में प्रसक्त आत्मा के यश का नाश होता है एवं वेश्या में प्रसक्त मानव के खानदानी का नाश हो जाता है।

हिंसापसत्तस्स सुधम्मनासो, चोरीपसत्तस्स सरीरनासो ।
तहा परत्थिसु पसत्तयस्स, सव्वस्स नासो अहमा गई य ।।१८।।

हिंसा में प्रसक्त के सुधर्म का नाश, चोरी में प्रसक्त के शरीर का नाश और परस्त्री में आसक्त का सर्वनाश होता है और अधम गति अर्थात् नरक, निगोद तिर्यंच गति में परिभ्रमण करना पड़ता है।

दाणं दरिद्दस्स पहुस्स खंती, इच्छा निरोहो सुहोइयस्स ।
तारूण्णए इंदिय निग्गहो य, चत्तारि एयाणि सुदुक्कराणि ।।१९।।

दरिद्रावस्था में दान देना, शक्तिशाली का क्षमा प्रदान करना, सुखोपभोक्ता का इच्छा निरोध और यौवनावस्था में इंद्रिय निग्रह ये चारों अत्यंत दुष्कर कार्य है।

असासयं जीवियमाहू लोए, धम्मं चरे साहु जिणो वइट्ठं ।
धम्मो य ताणं सरणं गइ य, धम्मं निसेवित्तु सुहं लहंति ।।२०।।

लोक में ज्ञानियों ने जीवितव्य को अशाश्वत कहा है। अतः जिनेश्वरों ने कहा है कि हे सज्जन पुरुष तुम एकमेव धर्माचरण करो यह धर्म ही रक्षक है, शरण लेने योग्य है, एवं यही गति है। धर्म की सेवा करनेवाला अर्थात् धर्माचरण कर्ता अतिशीघ्र शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

श्री पुण्य-पाप कुलकम्

छत्तीसदिणसहस्सा, वाससए होइ आउपरिमाणं ।
झिज्जंतं पइसमयं, पिच्छओ धम्ममि जइअव्वं ।।१।।

वर्तमान काल में मानव का आयुष्य सो वर्ष का मानकर उस हिसाब से यहाँ मानव को पुण्य-पाप का फल दर्शाया है। सो वर्ष के छत्तीस हजार दिन होते है और वह आयुष्य गर्भ में आते ही प्रति समय क्षीण हो रहा है इसको देखकर जानकर धर्म में यत्न-प्रयत्न करना चाहिए।

जइ पोसहसहिओ तव-नियमगुणेहिं गम्मइ एगदिणं ।
ता बंधइ देवाउं इत्तियमित्ताइं पलियाइं ।।२।।

जो आत्मा पौषध सहित तप नियम आदि गुणों के द्वारा एक दिन व्यतीत करता है तो उसे निम्न श्लोक में दर्शाये अनुसार देवायुष्य का बंध होता है-वह आत्मा इतना देवायु बांधता है।

सगवीसं कोडीसया सत्तहुत्तरी कोडिलक्ख सहस्सा य ।
सत्तसया सत्तहुत्तरी नवभागा सत्तपलियस्स ।।३।।

सत्तावीससो क्रोड़ सत्त्योत्तर क्रोड़, सत्योत्तर लाख सत्योत्तर हजार सातसो सत्योत्तर पल्योपम के ऊपर सतीया नव भाग देवायुष्य का बंध होता है।

अट्ठासीइ सहस्सा वाससए दुण्णि लक्खपहराणं ।
एगो वि अ जइ पहरो, धम्मजुओ ता इमो लाहो ।।४।।

दो लाख अट्ठ्यासी हजार प्रहर सो वर्ष के होते हैं। उसमें से एक प्रहर जिस आत्मा का धर्ममय व्यतीत होता है वह आत्मा निम्न प्रकार से देवायुष्य का लाभ प्राप्त करता है।

तिसयसगं चत्तकोडि लक्खा बावीस सहस बावीसा ।
दुसय दुवीस दु भागा, सुराउबंधो य इगपहरे ।।५।।

तीन सौ सुड़तालीस क्रोड़ बाईस लाख, बाईस हजार, दो सौ बाईस दो भाग ऊपर एक प्रहर में उपरोक्त पल्योपम का आयुष्य बांधता है।

दस लक्ख असीय सहसा मुहुत्तसंखा य होइ वाससए ।
जइ सामाइअसहिओ, एगो वि अत्ता इमो लाहो ।।६।।

दस लाख अस्सी हजार की संख्या में सौ वर्ष के मुहूर्त्त होते हैं। जो एक सामायिक सहित एक मुहूर्त व्यतीत करनेवाला आत्मा निम्न प्रकार से लाभ प्राप्त करता है।

बाणवयकोडिओ लक्खा गुणसट्ठि सहस्स पणवीसं ।
नवसयपणवीसजूआ, सतिहा अडभाग पलीयस्स ।।७।।

बाणु करोड ओगणसाठ लाख पच्चीस हजार नवसो पच्चीस पल्योपम उपर सातीया आठ पल्योपम देवायु का बंध करता है।

वाससए घडिआणं, लक्खिगवीसं सहस्स तह सट्ठी ।
एगा जु वि अ धम्म जूआ, जइ ता लाहो इमो होइ ।।८।।

एक सो वर्ष की घडियाँ एकवीस लाख साठ हजार है। उसमें से एक भी घड़ी जिस आत्मा की धर्मयुक्त व्यतीत होती है उसे निम्न लाभ मिलता है।

छायालकोडी गुणतीस लक्ख छासट्ठी सहस्स सय नवगं ।
तेसट्ठीकिंचूणा सुराउ बंधइ इगघडिए ।।९।।

छयालीस करोड उन्तीस लाख छासठ हजार नवसो त्रेसठ में किंचित् कम पल्योपम का देवायु एक घड़ी धर्म करनेवाला बांधता है।

सट्ठी अहोरत्तेणं घडीआओ जस्स जंति पुरिसस्स ।
निअमेणवि रहिआओ, सो दिअहओ निप्फलो तस्स ।।१०।।

जिस पुरुष की एक अहोरात्र की साठ घडियाँ नियम से धर्म रहित व्यतीत होती है। वह दिन उसका निष्फल गया ऐसा जानना।।१०।।

चत्तारि अ कोडिसया, कोडिओ सत्त लक्ख अडयाला ।
चालीसं च सहस्सा, वाससय हुंति ऊसासा ।।११।।

चारसो सात करोड अडतालीस लाख चालीस हजार श्वासोच्छ्वास

सौ वर्ष के होते हैं।

इक्को वि अ ऊसासो, न य रहिओ होइ पुण्णपावेहिं ।
जइ पुण्णेणं सहिओ, एगो वि अ ता इमो लाहो ।।१२।।

जीवात्मा का एक भी श्वासोच्छ्वास पुण्य या पाप से रहित नहीं होता। जो पुण्य उत्पादक क्रिया में एक उच्छ्वास व्यतीत होता है तो आत्मा इस प्रकार लाभ प्राप्त करता है।

लक्ख दुग सहस पणचत्तं चउसया अट्ठ चेव पलियाइं ।
किंचूणा चउभागा, सुराउ बंधे इगूसासे ।।१३।।

दो लाख पीस्तालीस हजार चार सौ आठ पल्योपम उपर किंचित न्यून चार भाग का देवायु का बंध एक उच्छ्वास पूण्य कार्य में व्यतीत करने वाला बांधता है।

एगुणवीसं लक्खा, ते सट्ठी सहस दुसय सत्तट्ठी ।
पलियाइं देवाउं, बंधइ नवकारउस्सग्गो ।।१४।।

उन्नीस लाख त्रेसठ हजार दोसो सतसठ पल्योपम का देवायु एक नवकार मंत्र के कायोत्सर्ग को करनेवाला बांधता है।

लक्खिगसट्ठी पणतीस, सहस दुसय दसपलिअ देवाउं ।
बंधइ अहियं जीवो, पणवीसूसास उस्सग्गो ।।१५।।

एकसठ लाख पेंतीस हजार दो से दस पल्योपम से कुछ अधिक देवायु का बंध पच्चीस उच्छ्वास का कायोत्सर्ग करनेवाला बांधता है। अर्थात् एक लोगस्स० चंदेसु निम्मलयरा तक का कायोत्सर्ग करनेवाला बांधता है।

एवं पावपराणं हवेइ निरयाउअस्स बंधो वि ।
इअ नाउं सिरि जिण कित्तिअंमि, धम्ममि उज्जमं कुणइ ।।१६।।

इसी प्रकार जो आत्मा उच्छ्वास प्रहर दिन वर्ष एवं जीवन को पापमय प्रवृत्ति में व्यतीत करता है तो ऊपर दर्शित पुन्य के स्थान पर पाप बंधकर उस समय उपरोक्त पल्योपमों का नरकायु बंधता है। ऐसा श्री जिनेश्वर भगवंतों के कथन को जानकर धर्म मार्ग में उद्यमवंत बन, धर्मोद्यम कर।

श्री पुण्योदय कुलकम्

१संपुन्न-इंदियत्तं २माणुसत्तं च ३आयरिय खित्तं ।
४जाइ-५कुल-६जिणधम्मो लब्भंति पभूय पुण्णेहिं ।।१।।

जिन-जिन जीवात्माओं का प्रबल पुण्योदय जागृत होता है उस समय उन आत्माओं को निम्न पदार्थों की प्राप्ति होती है।

१. इंद्रियों की संपूर्णता, २. मानवभव, ३. आर्यक्षेत्र, ४. उच्चजाति, ५. उच्चकुल, ६. जिनधर्म।

६जिणचलणकमलसेवा, ८सुगुरु पाय पज्जुवासं चेव ।
९सज्झाय-१०वाय-वडत्तं, लब्भंति पभूय पुण्णेहिं ।।२।।

७. जिनेश्वरों के चरण कमल की सेवा, ८. सद्गुरु भगवंतों की पादपद्म की पर्युपासना, ९. स्वाध्याय, १०. बाद में बड़प्पन अर्थात् वादि विजेता, प्रभूत पुन्योदय से प्राप्त होता है।

११सुद्धो बोहो १२सुगुरूहिं, संगमो १३उवसमं १४दयालुत्तं ।
१५दखिण्णकरणं जं, लब्भंति पभूयपुण्णेहिं ।।३।।

११. शुद्धबोध की प्राप्ति, १२. सद्गुरु का मिलना, १३. उपशमशांत भाव की प्राप्ति (समताभाव) १४. दयालुत्व, १५. दाक्षिण्यकरण, प्रभूत पुन्योदय से प्राप्त होता है।

१६समत्तं निच्चल त्तं, १७वयाण-परिपालणं १८अमायत्तं ।
१९पढणं २०गुणणं विणओ, लब्भंति पभूयपुण्णेहिं ।।४।।

१६. सम्यक्त्व की निश्चलता, १७. व्रतों की परिपालना, १८. अमायित्व, १९. पढ़ना, २०. गुणणा, २१. विनय धर्म की प्राप्ति, ये प्रबल पुण्य के उदय से प्राप्त होता है।

२२उस्सग्गे २३अववाये २४ निच्छय२५विवहारंमि निउणत्तं ।
मणवयणकायसुद्धि, लब्भंतिपभूयपुन्नेहिं ।।५।।

२२. उत्सर्ग, २३. अपवाद, २४. निश्चय, २५. व्यवहार इन चारों

में निपुणता अर्थात् उत्सर्गादि का पूर्णज्ञान एवं २६. मन-२७.वचन, २८. काया की शुद्धि, प्रबल पुण्योदय से प्राप्त होती है।

२९अवियारं तारुण्णं ३०जिणाणं राओ ३१परोवयाररत्तं ।
निक्कंपया य ३२झाणे, लब्भंति पभूय पुन्नेहिं ।।६।।

२९. तारुण्यवस्था में (यौवनावस्था में) अविकारी पना, ३०. जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा का राग एवं ३१ परोपकार रक्तता, प्रबल पुण्योदय से प्राप्त होती है।

३२परनिंदा परिहारो, ३४अप्पसंसा अत्तणो गुणाणं च ।
३५संवेगो ३६निव्वेओ लब्भंति पभूय पुण्णेहिं ।।७।।

३२परनिंदा का त्याग, ३३. दूसरों के परिहास का त्याग एवं ३४. स्वयं के आत्मगुणों की प्रशंसा से मुक्त, ३५. संवेग, ३६. निर्वेद की प्राप्ति, प्रबल पुण्योदय से होती है।

३७निम्मलसीलब्भासो, ३८दाणुल्लासो विवेग३१संवासो ।
४०चउगइदुहसंतासो लब्भंति पभूय पुण्णेहिं ।।८।।

३७. निर्मलशील पालन का अभ्यास, ३८. दान देने का उल्लास, ३९. विवेक की सानिध्यता, ४०. चारों गति के दुःखों के संताप का ज्ञान, ये सब प्रबल पुण्योदय से प्राप्त होता है।

४१दुक्कडगरिहा ४२सुक्कडाणुमोयणं ४३पायच्छित्ततवचरणं ।
४४सुहझाण४५नमुक्कारो लब्भंति पभूय पुन्नेहिं ।।९।।

४१. दुष्कृतों की गृहा, ४२. सुकृतानुमोदना ४३. प्रायश्चित्त रूप तपाचरण करना, ४४. शुभ ध्यान, ४५. नमस्कार महामंत्र की प्राप्ति, प्रबल पुण्योदय से होती है।

इय गुणमणिभंडारो, सामग्गी पाविऊण जेण कओ ।
विच्छिन्नमोहपासा, लहंति ते सासयं सुक्खं ।।१०।।

यह गुणमणियों की भंडार रूप सामग्री प्राप्त कर जिसने मोह रूप बंधन को नष्ट करने के लिए प्रयत्न किया है और उपरोक्त बातें जिस आत्मा को पूर्व पुण्योदय से प्राप्त हुई है और उसका सदुपयोग किया है वह आत्मा शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

अथ धर्माचार्य बहुमान प्रकरणम्

– आचार्य श्री रत्नसिंहसूरि कृत

नमिउं गुरुपयपउमं, धम्मायरियस्स नियसीसेहिं ।
जह बहुमणो जुज्जइ, काउमहं तह पयंपेमि ।।१।।

सद्गुरु भगवंत के चरण कमल में नमस्कार कर स्वशिष्यों को धर्माचार्यों का बहुमान (गुरु भगवंतों का) जिस रीति से करना चाहिए उसका वर्णन मैं कहता हूँ। उसकी प्ररूपणा करता हूँ ।।१।।

गुरुणो नाणाइजुया, महणिज्जा सयलभुवमज्झंमि ।।
किं पुण नियसीसाणं, आसन्नुवयारहेऊहिं ।।२।।

ज्ञानादि (ज्ञान-दर्शन चारित्र) गुण युक्त सद्गुरु तो सर्व पृथ्वी में माननीय (पूजनीय) है। तो फिर निकटतम उपकारी होने के कारण उनके शिष्यों के लिए क्या पूछना? अर्थात् आसन्नोपकारी होने के नाते (अतिशय) विशेष पूजनीय है ।।२।।

गुरुयगुणेहिं सीसो, अहियो गुरुणो हवेज्ज जइ कहवि ।
तहवि हु आणा सीसे, सीसेहिं तस्स धरियव्वा ।।३।।

गुरु से शिष्य विशिष्ट गुणों से कहीं अधिक भी हो जाय तो भी शिष्यों को गुरु की आज्ञा मस्तक पर धारण करनी चाहिए।
अर्थात बहुमान पूर्वक मान्य करनी चाहिए ।।३।।

जइ कुणइ उग्गदंडं, रुसइ लहुणवि विणयभंगंमि ।
चोयइ फरुसगिराए, ताडइ दंडेण जइ कहवि ।।४।।

अल्प अपराध में, अल्प विनय भंग में गुस्सा करें, उग्र दंड करे, कर्कश वचन से उपालंभ दे दंड से ताडन करे तो भी गुरु को शिष्य देव समान पूजे ।।४।।

अप्पसुएवि सुहेसी, हवइ मणागं पमायसीलोऽवि ।

तह वि हु सो सीसेहिं, पुइज्जइ देवयं व गुरु ।।५।।

गुरु अल्पश्रुत वाले हो, अल्प सुखशीलिये, अल्प प्रमादी हो तो भी सुशिष्यों के द्वारा भगवान के समान पूजे जाते हैं ।।५।।

सोच्चीय सीसो सीसो, जा नाउं इंगियं गुरुजणस्स ।
वहइ कज्जम्मि सया, सेसो भिच्चो वयणकारी ।।६।।

वही सच्चा शिष्य है जो गुरुजन के इंगित आकार को जानकर सदा सर्व कार्य में प्रवृत्त होता है। शेष तो कहने पर करनेवाला तो नोकर है।।६।।

जस्स गुरुम्मि न भत्ति निवसइ हिययंमि वज्जरेहव्व ।
किं तस्स जीविएणं? विडंबणामेत्तरूवेणं ।।७।।

हृदय में वज्र की रेखा के समान जिनकी गुरु पर भक्ति नही है, उनका विडंषडणा मात्र रूप जीने का भी क्या अर्थ? ।।७।।

पच्चक्खमह परोक्खं, अवन्नवायं गुरुण जो कुज्जा ।
जम्मंतरेऽवि दुलहं, हिणिंदवयणं पुणो तस्स ।।८।।

जो आत्मा प्रत्यक्ष या परोक्ष गुरु का अवर्णवाद करता है, उसे जन्मान्तंर में भी जिनेश्वर भगवंत के वचन दुर्लभ है ।।८।।

जा काओ रिद्धीओ, हवंति सीसाण एत्थ संसारे ।
गुरुभत्ति पायवाओ, पुप्फसमाओ फुडंताओ ।।९।।

इस संसार में शिष्यों के पास जो कुछ रिद्धी प्राप्त है, वह स्पष्ट रूप से गुरुभक्ति रूपी वृक्ष के पुष्प समान है ।।९।।

जल पाण दायगस्सवि, उवयारो तीरए काउं ।
किं पुण भवन्नवाओ, जो तारइ तस्स सुहगुरुणो ।।१०।।

पानी पीलाने वाले के उपकार का भी बदला चुकाया नहीं जा सकता तो फिर भव रूपी समुद्रमें से जो तारते है उन सुगुरु के उपकार का बदला कैसे चुकाया जा सकता है ।।१०।।

गुरुपायरंजणत्थं, जो सीसो भणइ वयणमेत्तेणं ।
मह जीवियंपि एवं, जं भत्ति तुम्ह पयम्ले ।।११।।

एयं कहं कहंतो, न सरइ मूढो इमंमि दिट्ठतं ।

साहेइ अंगणं चिय, घरस्य अब्भिंतरं लच्छिं ।।१२।।

गुरु चरण रंजन के लिए शिष्य वचन मात्र से (हृदय से नहीं) कहता है कि तुम्हारे चरण कमल की भक्ति ही मेरा जीवन है। ऐसी बात करने वाले मूढ़ (मूर्ख) को इस दृष्टांत का खयाल नहीं है कि घर का अंगन घर की लक्ष्मी को कहता है ।।१२।। (अंगन पर से जैसे घर की लक्ष्मी दिखाई देती है; वैसे तेरे वचन के प्रलाप से तेरे हृदय में भक्ति है या नहीं वह दिखाई देता है)

एसाच्चिय परम कला, एसो धम्मो इमं परं तत्तं ।
गुरुमाणसमणुकलं, जं किज्जइ सीसवग्गेणं ।।१३।।

शिष्यवर्ग के द्वारा गुरु के मनोनुकूल जो किया जाता है वही सर्वश्रेष्ठ कला है, वही धर्म है, वही परम तत्त्व है ।।१३।।

जुत्तं चिय गुरुवयणं, अहव अजुत्तं य होज्ज दइवाओ ।
तह वि हु एयं तित्थं, जं हुज्जा तं पि कल्लाणं ।।१४।।

गुरु का वचन युक्त हो या भाग्यवश अयुक्त हो, तो भी वह तीर्थ है। जो होगा वह भी कल्याण ही होगा ।।१४।। (अर्थात् गुरु के अयुक्त वचन से भी कल्याण ही होगा।)

किं ताए रिद्धीए, चोरस्य व वज्झमंडणसमाए?
गुरुयणमणं विराहिय, जं सीसा कहवि वंछंति ।।१५।।

गुरुजन के मन की विराधना करके शिष्यगण जिस रिद्धि को चाहते हैं, फांसी की सजा पाये हुए चोर के आभूषण जैसी उस ऋद्धि से क्या फायदा? ।।१५।।

कंडयणनिट्ठीवणउसास-पामोक्खमइलहुयकज्जं ।
वहुवेलाए पुच्छिय, अन्नं पुच्छेज्ज पत्तेयं ।।१६।।

खुजलाना, निष्ठिवन फेंकना, बारबार श्वासोच्छ्वास लेना आदि अति सूक्ष्म कार्य बहुवेल के आदेश से करना शेष सभी कार्य गुरु भगवंत को पूछकर करना ।।१६।।

मा पुण एगं पुच्छिय, कुज्जा दो तिन्नि अवरकिच्चाइं ।
लहुएसुवि कज्जेसुं एसा मेरा सुसाहूणं ।।१७।।

विशेष स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि—

एक कार्य की गुरु को पृच्छा कर दूसरे दो तीन कार्य न करें। सूक्ष्म कार्यों में भी सुसाधुओं की यह मर्यादा है ।।१७।।

काउं गुरुंपि कज्जं, न कहंति य पुच्छियावि गोविंति।
जे उण एरिसचरिया, गुरुकुलवासेण किं ताणं? ।।१८।।

बृहद् कार्य करके भी गुरु को कहे नहीं। गुरु पूछे तो अपलाप करे ऐसे आचरण वाले जो शिष्य है उनको गुरुकुलवास से क्या?।।१८।।

जोग्गाजोग्गसरुवं, नाउं केणावि कारणवसेणं ।
सम्माणाइविसेसं, गुरुणो दंसंति सीसाणं ।।१९।।

शिष्यों की योग्यायोग्यता का स्वरूप जानकर किसी कारणवश गुरुभगवंत शिष्य प्रति सन्मानादि अल्पविशेष भी बताते हैं ।।१९।।

एसो सयावि मग्गो, एगसहावा न हुंति जं सीसा ।
इय जाणिय परमत्थं, गुरुंमि खेओ न कायव्वो ।।२०।।

यह नित्य का मार्ग है कि शिष्य गण एक स्वभाव वाले सदा नहीं होते। इस परमार्थ को जानकर गुरु के विषय में किंचित् भी खेद न करना ।।२०।।

मा चिंतह पुण एयं, किं पि विसेसं न पेच्छिमो अम्हे ।
रत्ता मूढा गुरुणो, असमत्था एत्थ किं कुणिमो? ।।२१।।

कभी भी ऐसा विचार न करे कि हम गुरु में कोई विशेषता देखते नहीं है। गुरु रक्त, मूढ़ एवं असमर्थ है तो हम क्या करे?।।२१।।

रयण परिक्खगमेगं, मुत्तुं समकंतिवन्नरयणाणं ।
किं जाणंति विसेसं, मिलिया सव्वे वि गामिल्ला ।।२२।।

एक समान कांति एवं वर्णवाले रत्नों के विषय में उसका पृथक्-पृथक् मूल्य एक रत्न परीक्षक के अलावा चाहे जितने अन्य ग्रामिण जन मिल जाय तो भी वे क्या जानें? ।।२२।।

एयं चिय जाणमाणा, ते सीसा साहयंति परलोयं ।
अवरे उयरं भरिउं, कालं वोलिंति महिवलए।।२३।।

(रत्न परीक्षक सम) गुरु को जाननेवाले शिष्य गण परलोक को साध लेते हैं। दूसरे तो पेट भरकर पृथ्वी पर समय पसार करते हैं।।२३।।

एयं पिहु मा जंपइ गुरुणो दीसंति तारिसा नेव ।
जे मज्झत्था होउं जहट्ठिय वत्थुं वियारंति ।।२४।।

ऐसे शब्द भी न बोले कि वैसे गुरु भगवंत दिखायी नहीं देते जो मध्यस्थ होकर यथावस्थित वस्तु को विचारते हैं ।।२४।।

समयाणुसारिणो जे, गुरुणो ते गोयमं व सेवेज्जा ।
मा चितंह कुविकप्पं, जह इच्छह साहिउं मोक्खं ।।२५।।

समयानुसार जो गुरुभगवंत है उनको गौतम स्वामी समान मानकर सेवा कर। जो मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा हो तो किसी भी प्रकार का गुरुसेवा के विषय में कुविकल्प न कर ।।२५।।

वक्कजडाअहसीसा, के वि हु चिंतति किंपि अघडंतं ।
तह वि हु नियकम्माणं, दोसं देज्जा न हु गुरुणं ।।२६।।

वक्र एवं जड़ ऐसे शिष्य कितने ही अघटित विचार करते है। उसमें भी स्वकर्म का दोष विचारना गुरु को दोष न देना ।।२६।।

चक्कित्तं इंदत्तं गणहरअरहंतपमुहचारुपयं ।
मणवंछियमवरंपि हु, जायइ गुरुभत्ति जुत्ताणं ।।२७।।

चक्रवर्तित्व, इंद्रत्व, गणधर पद, अरिहंत पद आदि सुंदर संपदा और अन्य भी मनवंछित की प्राप्ति गुरुभक्ति युक्त आत्माओं को ही होती है।।२७।।

आराहणाओ गुरुणो अवरं न हु किंपि अत्थि इह अमियं ।
तस्स य विराहणाओ, बीयं हलाहलं नत्थि ।।२८।।

गुरु की आराधना करने जैसा अन्य कोई अमृत नहीं है। और उनकी विराधना करने जैसा दूसरा कोई हलाहल विष नहीं है ।।२८।।

एयंपि हु सोऊणं गुरुभत्ति नेव निम्मला जस्स ।
भवियव्वया पमाणं, किं भणिमो तस्स पुण अन्नं? ।।२९।।

इस वर्णन को श्रवणकर (पढ़कर) भी जिसके हृदय में गुरुभक्ति उत्पन्न नहीं होती। उसके लिए तो भवितव्यता ही प्रमाण भूत है उसके

विषय में दूसरा क्या कहे? ।।२९।।

साहूण साहूणीणं सावयसड्ढीण एस उवएसो ।
दुण्हं लोगाण हिओ, भणिओ संखेवओ एत्थ ।।३०।।

साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओं के लिए उभयलोक में हितकारी उपदेश यहाँ संक्षेप में कहा है ।।३०।।

परलोयलालसेणं किंवा इहलोयमत्तसरणेणं ।
हियएण अहव रोहा जह तह वा इत्थ सीसेणं ।।३१।।
जेण न अप्पा ठविओ, नियगुरुमणपंकयम्मि भमरोव्व ।
किं तस्स जीविएणं? जम्मेणं अहव दिक्खाए? ।।३२।।

परलोक की इच्छा से या इस लोक में एक मात्र गुरुभगवंत ही शरणभूत है ऐसे भाव से हृदय के बहुमान पूर्वक मान से या दबाव से टुंक में जिस किसी भी रीति से जिन शिष्यों ने स्वयं के गुरु के मन रूपी कमल के विषय में भ्रमर सम स्वयं के आत्मा को स्थापन नहीं किया है उससे जीने से, जन्म से एवं दीक्षा से क्या?

जिस प्रकार भ्रमर कमल में भ्रमण करता है उसी प्रकार गुरु के चित्तरूप कमल में स्वयं के आत्म को स्थापन करना है। जो आत्मा यह नहीं कर सकते उनका जन्म, जीवन एवं दीक्षा सब व्यर्थ है ।।३१-३२।।

जुत्ताजुत्त वियारो, गुरुआणाए न जुज्जए काउं ।
दइवाओ मंगुलं पुण, जइ हुज्जा तंपि कल्लाणं ।।३३।।

गुरु आज्ञा के विषय में युक्तायुक्त का विचार करना योग्य नहीं है। कभी अयुक्त आज्ञा होगी तो भी उससे आत्मकल्याण ही होगा।।३३।।

सिरिधम्मसूरिपहूणो, निम्मल कित्तीए भरिय भुवणस्स ।
सिरि रयण सिंहसूरी, सीसो एवं पयंपेइ ।।३४।।

जिनकी निर्मल कीर्ति से पूरा विश्व भरा हुआ है ऐसे धर्मसूरिप्रभु के श्री रत्नसिंहसूरि नामक शिष्य इस प्रकार कहता है।।३४।।

मूलगुण हीन गुरु को विधिपूर्वक छोड़ने का विधान भी है।

जिनके न मित्र शत्रु कोई, न अपने और पराये है ।
विषयों से दूर कषाय मुक्त, वे योगी महा कहाये है ॥
देव सेवा फल देत है, जाके जैसे भाव ।
जैसे मुखकर आरसी, देखो सोई दिखाय ॥
पढ पढकर ज्ञानी हुए, मिटा नहीं तन ताप ।
राम राम तोता रटे, कटे न बंधन पाप ॥
वृक्ष कभी न फल चखे, नदी न संचे नीर ।
परमार्थ के कारणे, साधु धरे शरीर ॥
पूर्वज हमारे कौन थे ? यह बैठ कर सोचो सभी ।
यह प्रश्न जीवन मंत्र है, मिलकर सभी सोचो अभी ॥
भूले हुए हम निज देश के अभिमानी को ।
विज्ञान को श्रुतज्ञान को सद्ज्ञान को सन्मान को ॥
श्री आर्य जगती जो कभी मन मोहनी भू सुन्दरा ।
लज्जा बचाने हाय ! अब यह शोधती गिरि कंदरा ॥
कितना बढा बढ रहा फिर पापाचार है ।
श्रीमंत का अब दीन पर होता निरंतर वार है ॥
मातापिता गुरु का करत, जो आदर सत्कार ।
वे भाजन सुख सुयशा के, जीवे वर्ष हजार ॥
जब तक आशा भोगों की है, योग हाथ न आवे ।
मुर्ख दौडता दक्षिण मुख कर, कहा हिमालय पावे ॥
जो विषयो की जान निरसता, फिर भी भोगन चाहे ।
नर-नारी है मंदबुद्धि वे, बिना पूंछ गधा है ॥
जब आते हैं अच्छे दिन, तब अच्छी बात सुहाती ।
नहीं तो समझाने पर भी, नहीं समझ में आती ॥
शुभ आचरण ही धर्म है, जो श्रेष्ठ सुख में जा धरे ।
शुभ आचरण बनता तभी, जब आत्म श्रद्धा मन धरे ॥
आत्मश्रद्धा उड़ रही पर, वासना है जम रही ।
तब देश कैसे हो सुखी, जब ध्येय ही है नहीं सही ॥
जो मानव जाने नहीं, अपना पराया भेद ।
ज्ञान न उसका कर सके, भव वन का विच्छेद ॥
भेद ज्ञान महिमा अगम, वचन गम्य नहीं होय ।
दूध स्वाद उगले नहीं, पीते मीठा तोय ॥

... आर्थिक सहयोगी ...

लेहर-कुन्दन ग्रुप

मुंबई - दिल्ली - चैन्नइ -हरियाणा

श्रीमती गेरोदेवी जेठमलजी बालगोता परिवार

मेंगलवा द्वारा मुनिराजश्री जयानंदविजयजी

आदिठाणा की निश्रा में चातुर्मास एवं उपधान

करवाया उस समय के आराधक एवं अतिथि

गण की साधारण की आय में से

प्राप्ति स्थान

शा देवीचंद छगनलालजी
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : ०२९६९ - २२०३८७

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी
साँथू - ३४३०२६,
फोन : २५४२२१

श्री विमलनाथ जैन पेढी
बाकरा, राज. - ३४३०२४

शा. नागालालजी वजाजी [illegible] भीनमाल धाम
शांतिविला अपार्टमेन्ट, ती[illegible]तगिरि लिंक रोड,
काजीका मैदान, गोपीपुरा, [illegible]पालीताणा-३६४२७०.
फोन : २४२२६५०

Serving JinShasan
142045
gyanmandir@kobatirth.org